संजय चौबे

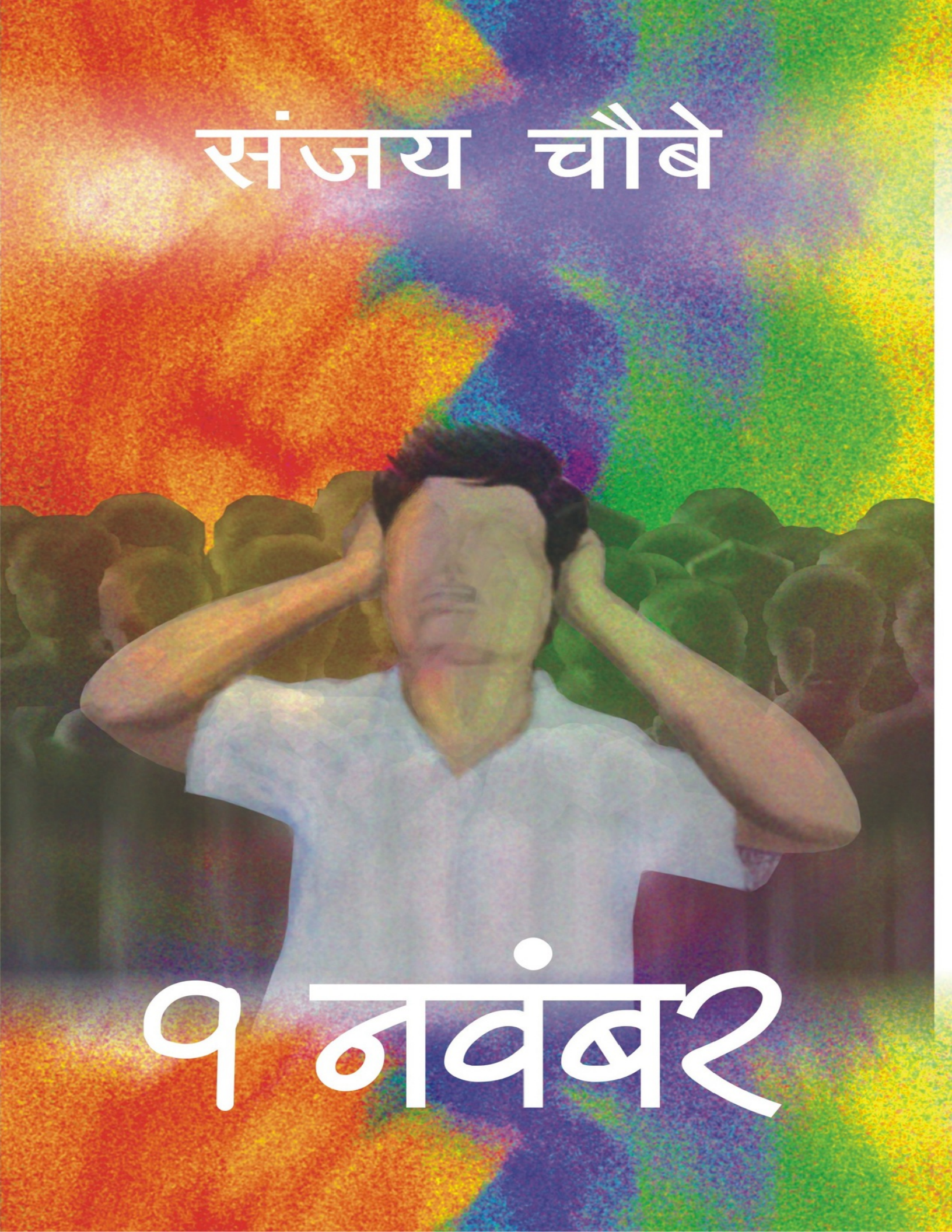

९ नवंबर

9 नवंबर
(उपन्यास)

“..... यहीं भागलपुर में जमुना कोठी है. तुम जा कर देखना. वहाँ एक डॉक्टर लेकर जाना. माँ होती है न. माँ बच्चों को दूध पिलाती है लेकिन तुम उसके स्तन काट लो तो ? दरोगा, एक डॉक्टर भेजो.... जमुना कोठी में बुन्नी बेगम के स्तन न जाने कैसे कट गए, बच्चों का क्या होगा ! बच्चे भी तो थे. हाँ याद आया, दिन दहाड़े बच्चों के सिर धड़ से अलग हो रहे थे. मैं वहाँ था, दरोगा. बच्चों के पैर भी कट रहे थे. ये बीमारी ठीक नहीं है, दरोगा. किसी अच्छे डॉक्टर को लेकर जाना. वे सब वहीं होंगे. मैं ठीक हो सकता हूँ तो वे सब भी ठीक हो सकते हैं.... बुन्नी बेगम है उसका नाम.... नाम भूल भी जाओ तो कोई बात नहीं माँ को कैसे भूलोगे...”

9 नवंबर

- संजय चौबे

ISBN- 978-93-81377-69-7

9 नवंबर

© संजय चौबे

प्रथम संस्करण : जनवरी 2015
द्वितीय संस्करण : जून 2015
तृतीय संस्करण : जनवरी 2017

प्रकाशक :
मनसा पब्लिकेशन्स
2/256, विरामखंड, गोमतीनगर,
लखनऊ – 226010. यू.पी.
फोन – 0522 – 4029598
ई मेल – manasapublications2007@rediffmail.com
वेबसाइट – www.manasapublications.org

आवरण : अवनीश दास

सर्वाधिकार सुरक्षित :
इस पुस्तक अथवा इसके किसी अंश को इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोग्राफी रिकॉर्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने से पूर्व लेखक की लिखित अनुमति अनिवार्य है.
किताब के कथानक अथवा विचार से प्रकाशक की कोई सहमति नहीं और इसके विषय वस्तु से प्रकाशक का कोई लेना देना नहीं है.

9 November
A novel by Sanjay Choubey

तीसरे संस्करण पर

सर्वप्रथम धन्यवाद पाठकों का, जिनके कारण '9 नवंबर' का तीसरा संस्करण छपने जा रहा है. इसी बीच इस उपन्यास का अंग्रेज़ी अनुवाद भी पाठकों के लिए उपलब्ध हो रहा है.

दूसरे संस्करण की भूमिका में अंतर्मन की बेचैनी का जिक्र किया था. फिर दुहराता हूँ कि बचपन से जिन चीजों, प्रतीकों, धर्म, जाति से प्रेम करना सिखाया जाता है, जिनके लिए हमें बड़ा गर्व होता है व हम मर-मिटने को तैयार रहते हैं – वह कितना खतरनाक है. खतरनाक इसलिए कि हमारा यही प्रेम दूसरों से नफरत करने, उनकी हत्या करने, बस्तियों को जलाने के लिए प्रेरित करता है. भले ही हम सीधे – सीधे इन कृत्यों में लिप्त न हों, लेकिन धर्म व जाति के नाम पर ऐसे अनैतिक कृत्य करने वालों के विरोध में खड़े होने की बजाय इसमें हमारी मूक सहमति होती है और तो और ऐसा करने वाले धर्म व जाति के रक्षक के रूप में उभर कर हमारे नायक बन जाते हैं. हम लाशों की गिनती में भी फायदा–नुकसान देखते हैं – हमारे तीन मरे, उनके पाँच मरे. कुल आठ के नुकसान की बजाय दो के फायदे गिनाने वाली दृष्टि विकसित करने में जाति, धर्म, अंध राष्ट्रवाद के झंडाबरदार लगातार लगे ही रहते हैं. जन्म की दुर्घटना मात्र से बनी जाति, धर्म के लिये इतना पागलपन परेशान करता है.

भले ही देखने में '9 नवंबर' की कहानी आज से तीस साल पुराने भारत के छोटे से भूभाग की है, असल में यह इसी दौर की कहानी है. केवल अपने ही रंग में, बस एक रंग में पूरी दुनिया को रंगने की चाहत धरती को रक्तरंजित करती चली जा रही है. बेबस जिन्दगी कराह रही है.

फिर भी '9 नवंबर' के नायक शेखर की भांति कुछ ऐसे हैं जो दुनिया की बहुरंगी सुन्दरता को बचाए रखने हेतु अथक प्रयास कर रहे हैं. बस इसी कारण उम्मीद बची है. पाठकों द्वारा '9 नवंबर' को हाथों-हाथ लेना उम्मीद के बचे रहने का प्रमाण है.

अंत में आप सभी पाठकों का एक बार फिर से हार्दिक आभार जिनके कारण एक लेखक की सृजनशीलता बनी रहती है और बतौर लेखक उसका अस्तित्व कायम रहता है.

16.12.2016 - संजय चौबे

एक बार फिर

'9 नवंबर' का पहला संस्करण जनवरी 2015 के दूसरे पखवारे में आया था. चार महीने के अंदर इसके दूसरे संस्करण के प्रकाशन के अवसर पर आपसे अपना कुछ बाँटते हुए अच्छा लगा रहा है.

'9 नवंबर' में भूमिका के न होने की शिकायत आरंभ से ही दर्ज की जा रही थी. '9 नवंबर' की भूमिका क्या है – यह सवाल परेशान करता है और मेरे लिए इसे लिखना मुश्किल है. इसलिए आपसे माफी माँगता हूँ कि आज भी जो लिख रहा हूँ वह भूमिका नहीं है. आज जो कह रहा हूँ वह अंतर्मन की बेचैनी है और '9 नवंबर' भी उसी बेचैनी का परिणाम रहा है.

सदियों से अंतर्मन बेचैन रहा है कि मेरा परिचय क्या है; मैं कौन हूँ. इस परिचय की खोज में आदमी बना, पुरुष व स्त्री बने, मेरी जाति बनी, मेरा राष्ट्र बना, मेरा धर्म बना और न जाने क्या – क्या बनता चला गया. अच्छा लगता है कि मेरा एक परिचय है, मेरी एक पहचान है लेकिन अपनी इस पहचान को कायम रखने के लिए मेरे सारे उपक्रम धरती को रक्त रंजित कर रहे हैं. दावा है कि मेरा धर्म प्रेम व करुणा की स्थापना करता है लेकिन मैं अपने धर्म की खातिर मकान नहीं, घरों को जला रहा हूँ; बेबस औरतों के साथ बलात्कार कर रहा हूँ, मासूम बच्चे जिनकी अभी कोई पहचान नहीं उनकी पहचान मिटा रहा हूँ. मेरा धर्म बोध की ज्योति लाने की बात करता है लेकिन मुझे सूझ नहीं रहा कि बहते खून के अतिरेक से धरती दलदली होती जा रही है और मेरे पाँव लगातार धसते जा रहे हैं. मैं अपने पाँव नहीं चल पा रहा, दलदल की शक्ति लगातार बढ़ती जा रही है. मुझे समझ में नहीं आ रहा - मैं क्या कहना चाहता हूँ और क्या कह रहा हूँ; लेकिन कोई है जो मेरे हर 'कहे' को कागज़ पर उतार रहा है. कागज़ पर उतारने के बाद वह कहता है – '9 नवंबर' तुम्हारा है. उसके जोर देने पर मैं '9 नवंबर' पढ़ता हूँ तो पाता हूँ इसमें मेरी नहीं, कुछ 'संशयात्माओं' की भूमिका रही है.

हृदय इन 'संशयात्माओं' के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता है क्योंकि उनके बिना '9 नवंबर' नहीं होता और पाठकों द्वारा इसे हाथों – हाथ लेना इंगित कर रहा है कि 'संशयात्माओं' की गिनती बढ़ रही है. इस कड़ी में एक और 'संशयात्मा' मिला है, जो इसका अनुवाद अंग्रेजी में कर रहा है. शीघ्र ही '9 नवंबर' का अंग्रेजी अनुवाद भी आपके हाथ में होगा.

लखनऊ
16.05.2015 - संजय चौबे

बिहार के सुदूर देहात
टीकाचक
की ढहती स्मृति के नाम
जहाँ मैं जन्मा व पला – बढ़ा था.

“आँधी – आँधी..... आँधी – आँधी .....”

अंधड़ को पकड़ने की कोशिश में वह छत से छलांग लगा देता है जिससे निश्चय के बड़े फाटक पर जहाँ – तहाँ खून के छींटें दिखने लगते हैं.

लोग फुसफुसाते या फिर शोर मचाते भीड़ की शक्ल ले रहे हैं.

परकोटे पर लटकी दो सूखी आँखें शून्य में कुछ टटोल रही हैं, उधर हर तरफ से घिरा वह धरती पर घिसटने की असफल कोशिशों के बीच अपनी बंद मुट्ठी को रह - रह कर धरती पर पटकता है और लोग, जो न्यायाधीश होते हैं, लाल छींटों से बचते हुए पीछे हट जाते हैं.

तेज अंधड़ की वजह से अँधेरा गहराने लगा है; बेचैनी की दशा में वह अब अपनी पूरी ताकत से मुट्ठी पटकता है.....

गिद्धों- चीलों की बढ़ती संख्या के बीच वह आसमान से उतरती है, वह अंतिम दफा मुट्ठी पटकता है. धरती और आसमान के बीच की लड़ाई में उसकी हँसी गूँजती है-

“आलू .... आलू.....”

अंततः बंद मुट्ठी खुल जाती है.

-1-

ग्यारह साल की उम्र में पढाई के लिए उसे घर से बाहर भेजा गया था. आज वह वापस आ रहा है, अपने घर में जिसका नाम है – निश्चय.

निश्चय के पहले तल्ले पर स्थित उसका कमरा ग्यारह साल बाद खुला है. कमरे की सफाई व साज सज्जा अलका के जिम्मे है, जिसे वह बचपन में आलू कह कर चिढ़ाता था. आलू यानी अलका तिवारी आज चहक रही है –

"अरे बाबा ! इसे यहाँ नहीं, वहाँ रखो."

"फुआ ! तुम भी कमाल करती हो, बताओ इस कमरे में यह पर्दा सूट करता है, भला. तुम्हारा बेटा पूरा न सही, थोड़ा तो अंग्रेज हो गया होगा. क्या कहेगा वह ? कलर कॉम्बिनेशन का थोड़ा ख्याल तो रखना चाहिए."

फुआ के सौम्य चेहरे पर हल्की सी मुस्कान आती है –

"वह न तो अंग्रेज होगा न हिन्दुस्तानी. वह न मेरा होगा न तेरा; सारी बेवकूफियों से परे वह कुछ और होगा."

फुआ शेखर भैया को लेकर कितनी सीरियस हो जाती है, अलका ने चुप होना बेहतर समझा लेकिन थोड़ी देर में ही चीखी –

"वाह ! बिलकुल सही. फुआ के सुपुत्र का फोटो यहीं लगाओ. देखो तो किस अंदाज में फोटो खिंचवाया है ! दुनिया के सबसे समझदार इन्सान कितने विचार मग्न हैं. है न !"

अंततः निश्चय के सबसे बड़े व भव्य कमरे की सफाई हो गयी और अलका को छोड़ सभी चले गए. अलका ने पूरब की तरफ का दरवाजा खोला जो बालकनी में खुलता. बालकनी से दूर तक फैला बसुआ पोखर दिखा जिसमें खिल आये कमल उसकी खूबसूरती को एक नया आयाम दे रहे थे. रवि की सवारी सज रही थी. उसके तेज में किसी और का भी तेज नजर आया. यद्यपि वह सारी रात जगी थी, उसकी आँखों में नींद का पता नहीं था. शेखर भैया का प्लेन पटना हवाई अड्डे पर उतरने वाला होगा, अलका ने बहती हवा को अपने हाथों छुया.

देखते - देखते रवि अपनी सेना के साथ धरती पर उतरा. उस दिन वह भी बसुआ पोखर में उतर गया था और कुछ ही देर में चीखने लगा था –

"आलू ..... आलू.....!"

वह डूब रहा था और अलका रो रही थी,

"शेखर भैया..... फुआ ! फुआ ! भैया डूब रहा है."

कई लोग एक साथ कूद पड़े थे और जब तक उसे बाहर निकाला गया वह बेहोश हो चुका था. फुआ इसी बालकनी पर आँखों में एक अनोखा शून्य लिए चुपचाप देर तक खड़ी रह गयी थीं जबकि नीचे लोगों की भीड़ थी. शिवपूजन काका ने उल्टा लिटा उसके पेट से पानी निकाला. कुछ देर में शेखर भैया की आँखें खुली तो माँ – बेटे की नजरें मिलीं –

"माँ !"

शेखर भैया की सिसकी बंद होने का नाम नहीं ले रही थी, लेकिन फुआ बुत की तरह खड़ी रहीं. कुछ देर बाद आलू अपनी आँखें पोछ शेखर भैया के करीब जाती है और उन्हें गुदगुदाती है. वे खिलखिला पड़ते हैं –

"शिवपूजन काका छोड़ो मुझे. इस आलू – कचालू की वजह से मैं डूब जाता."

शिवपूजन काका के बंधन से छूट वे आलू के पीछे दौड़ पड़ते हैं.

ग्यारह साल के शेखर भैया को पढ़ने के लिए महागामा से बाहर भेजा जा रहा था. निश्चय में उपस्थित हर आदमी की आँखें नम थीं. यहाँ तक कि फुआ भी शायद पहली बार नम हुई थी; आलू पैर पटक – पटक कर रो रही थी लेकिन न जाने क्यों शेखर भैया के चेहरे की मुस्कान कम होने का नाम नहीं ले रही थी. उन्हें पता था कि वे बोर्डिंग स्कूल में रहेंगे – शिवपूजन काका ने एक दिन पहले हॉस्टल के भूत के बारे में बताया था. "क्या शेखर भैया की मुस्कान असली थी" – अलका को आज तक उत्तर नहीं मिल पाया है. आठ साल की आलू की बड़ी – बड़ी आँखों में बादल फटा था लेकिन उस बारिश में भी शेखर भैया नहीं भीगे थे. रोते – रोते आलू ने एक गंभीर प्रश्न किया –

"शेखर भैया, इतने खुश क्यों हो ?"

शेखर भैया ने कोई जवाब नहीं दिया और उसे बिलखता छोड़ दौड़ते हुए बाहर जा गाड़ी में बैठ गए.

उधर शेखर महागामा से नैनीताल और नैनीताल से अमेरिका जा रहा था, इधर आलू सिलहन से महागामा फिर महागामा से पटना पहुँच गयी. आलू की जगह 'अलका' ने ले ली. आज शेखर मैनेजमेंट की पढ़ाई कर वापस आ रहा है तो अलका हिंदी साहित्य से स्नातक कर रही है. जब उसने हिंदी साहित्य लेने का निर्णय लिया था, शेखर ने अमेरिका से बधाई भेजी थी –

"..... अच्छा लग रहा है. सोच रहा हूँ हमारे कुछ निर्णय किस तरह हमें सच्चाई व ह्रदय के निकट ले जाते हैं तो कुछ निर्णय देखते ही देखते हमें पाखंड

की सत्ता का दूत बना देते हैं...”

शेखर भैया कब किसे पाखंड करार दे दें और कब किसे दुनिया का सबसे बड़ा सच मान लें – यह समझ पाना बड़ा मुश्किल रहा है. सच को पूरे नंगेपन में महसूस करना, परेशान हो जाना व सच के नंगेपन का सरेआम उद्घाटन कर लोगों को परेशान करना, उनकी बचपन से आदत रही है –

“नहीं बेटा, मैं तो उसे प्यार कर रहा था; आलू से पूछ लो.....”

निश्चय के आँगन में एक हंगामा हो रहा था –

“चाचा... आलू से क्या पूछना. मैंने अपनी आँखों देखा है. आप उसे गोद में बिठा कर क्या कर रहे थे....”

आँगन में कोई भी एक दूसरे से नजर नहीं मिला पा रहा था, सिवाय शेखर भैया के. शेखर भैया बोलते जा रहे थे कि अचानक एक थप्पड़ की आवाज़ आयी और सन्नाटा पसर गया. निश्चय के मालिक (शेखर के पिता, जिन्हें लोग श्रद्धा से श्रद्धानंद बाबा या मालिक कहते हैं) ने फरमान जारी किया-

“सदानन्द, गाँव छोड़ कर भागो इससे पहले कि कुछ बुरा घट जाय.”

ऊँचे संस्कारों व महान सभ्यताओं में ऐसी बातों की चर्चा नहीं होती लेकिन शेखर भैया ऐसी चर्चाओं में क्यों उलझ जाते हैं. क्या उनका ऊँचे संस्कार और हमारी महान सभ्यता से कोई सरोकार नहीं. अलका के अंदर का आलू आकार लेना आरंभ करता है.

ये सब गंदी चीजें किसी को बताने की नहीं होतीं, आलू भी नहीं बताती. यह तो शेखर भैया थे जिन्हें कभी कोई भय नहीं लगा चाहें बात गंदी हो या अच्छी. इस घटना के बाद निश्चय के मालिक का चचेरा भाई सपरिवार न जाने कहाँ गुम हो गया – कोई इस बात की चर्चा नहीं करता.

अलका का दिमाग बेतरतीब स्मृतियों से भन्ना उठा. उसे लगने लगा वह एक ऐसी रेडियो हो रही है जो एक साथ कई स्टेशनों के सिगनल पकड़ने लगे. बचपन के वे दिन जिसके मात्र दो ही मुख्य स्टेशन थे – एक सिलहन तो दूसरा निश्चय लेकिन आज वह एक शोर से आक्रांत थी क्योंकि इन दो स्टेशनों के ढेरों पात्र निर्देशक के नियंत्रण से बाहर हो एक ही साथ अपनी – अपनी कला के प्रदर्शन पर उतारू थे. कोई राग भैरवी लिए अलका के समक्ष था तो कोई भीमपलासी गाने लगा, किसी को अपने श्रृंगार रस पर बड़ा मान था तो

कोई वीभत्स रस लिए मंच पर आसीन. उधर सिलहन में उसकी मंझली चाची उसे लेकर माँ पर तानों की बौछार कर ताली बटोरने को उद्धत दिख रही थी –

"थोड़ी तो शर्म होनी चाहिए. हम गरीब हुए तो क्या? अपनी बेटी को पलने बढ़ने के लिए क्या हवेली भेज दें. महारानी की बेटी हवेली में रहेंगी और उसके रंग – ढंग तो देखो सिलहन में मन नहीं लगेगा. अपना घर अपना घर होता है, लेकिन यह तो मिट्टी गारे का खपरैल मकान है.

माँ मायूस सी चुप बैठी है, उसे शायद समझ में नहीं आ रहा कि वह क्या जवाब दे. उधर मंझली चाची का प्रलाप अनवरत जारी है. वे मुँह बिचका कर उसकी कही बातों की नक़ल करती हैं –

"..... माँ कितनी गंदगी है यहाँ, निश्चय में सब कुछ साफ़ सुथरा ..... माँ मुझे वापस जाना है. फुआ ने कहा है – 'तुम तुरंत चले आना'. बाप रे बाप अपना घर गंदा; वे लोग बड़े साफ़ सुथरे.. समझा लो नहीं तो रोना होगा. बेटी है – ज्यादा आसमान में नहीं उड़ना चाहिए. कल शादी भी करनी है. शादी तो अपनी औकात वाले से ही होगी. क्या हवेली वाले राजकुमार ढूंढ कर लायेंगे. हवेली वाले को जानते नहीं क्या ..... वे क्या देंगे बदनामी के सिवा; सब जानते हैं सदानंद और महारानी की बेटी के किस्से को."

किस्से की बात सुन अब माँ के लिए चुप रहना मुश्किल था –

"खबरदार मंझली .. ... जबान संभाल के नहीं तो राख लगा कर जबान खींच लूंगी. अनाप – शनाप मत बको. छि छि जरा सी की बच्ची, वो जो तुम्हारी भी बेटी लगती है...."

माँ अक्सर लड़ाई के अंतिम प्रसंग में अपना किरदार अदा करती है लेकिन इसके बाद मंच पर पर्दा गिराने के सिवा और कुछ नहीं बचता. माँ की दहाड़ जारी थी –

"..... मंझले, अपनी जनाना को संभालिए नहीं तो यह हरामजादी कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगी. इस कलमुँही को बीच – बीच में कौन सा दौरा चढ़ जाता है. मुँहझौंसी... कुतिया..... दीदी के घर में तेरी पूछ नहीं होती तो मुझसे क्यों जलती है..."

मंझली चाची साफ ! – शेरनी की दहाड़ के आगे श्रीमती गीदड़ कहाँ टिक पाती हैं. अपनी सगी फुआ के घर जाकर कुछ दिन गुजार लेने पर इतना हंगामा; कितनी संकीर्ण

मानसिकता के हैं घर के लोग. अलका निश्चय को एक छोर से दूसरे छोर तक निहारती है. अगर फूफा बड़े आदमी हैं, उनकी प्रसिद्धि है तो क्या वे बुरे हो गए. सद्दू फूफा ..... वे भी तो अच्छे ही थे, लेकिन अचानक उन्हें उस दिन क्या हो गया था और इसकी उन्हें कितनी बड़ी सजा मिली. बेचारे शर्म के मारे न जाने कहाँ चले गए. सद्दू फूफा की जोरदार हंसी ! बात – बात पर सारे बच्चों को गुदगुदी कर हंसा देना; कभी काले पीले धागों की डायन की बात तो फिर उस डायन को हँसा – हँसा कर मारना. हँसोड़, जीवंत, हँसी से लबालब... चेहरे पर एक आभा जो निश्चय के हरेक सदस्य के चेहरे पर होती है. लेकिन सद्दू फुआ यानी सद्दू फूफा की बीवी कितनी कर्कश थीं – हमेशा सद्दू फूफा को ताने मारती हुई –

"जीवन में कुछ कर तो पाये नहीं. अपनी हैसियत, जमीन जायदाद के बावजूद एक भाई की छाया में पलने वाला एक पंगु आदमी, जिसने पैदा भी की तो एक पंगु औलाद....."

सद्दू फूफा "पंगु औलाद" की गाली सुन मायूसी से बबली दीदी को निहारते जो हमेशा अपनी घोड़ी को "चल मेरी घोड़ी टिक – टिक" हाँकती रहतीं. लाख कोशिश के बावजूद उसकी घोड़ी टस से मस नहीं होती. फुआ के चीखने पर बबली दीदी उन्हें इशारे से बुलाती लेकिन सद्दू फूफा उसके पास न जा कर घर से बाहर निकल निश्चय के पिछले हिस्से में चले जाते जहाँ बच्चे खेल रहे होते. फिर वहाँ फूटता हँसी का एक फव्वारा – कितनी जादुई हँसी थी, उनकी. उस शाम जब वह अकेली थी उसे गुदगुदाते हुए फूफा का चेहरा अचानक ही सख्त हो गया और उनकी बोली लड़खड़ाने लगी –

"मेरी बच्ची ..... तू .... एक नया जादू देखेगी."

उन्होंने उसके नन्हें शरीर को अपनी तरफ भींच लिया; कितनी छोटी थी वह. अलका का रेडियो अभी भी कई स्टेशनों को एक साथ पकड़ रहा था कि एक स्टेशन से स्पष्ट सिगनल मिलता मालूम पड़ा –

"अलका ! अलका ! ..... अरे पागल हो गयी है क्या? वहाँ धूप में खड़ी – खड़ी क्या सुखा रही है. चल नीचे आ ....."

धूप में उस दिन कपड़े सुखाये थे जब पन्द्रह दिनों की लगातार बारिश ने कहलगाँव, एकचारी यहाँ तक कि चंडी थान को अपनी चपेट में ले लिया था. कुम्भकर्ण पासी के साथ चंडी माई भी बह गईं – शिवपूजन काका की खबर पक्की होती थी. महादेव थान की गायें तैरती कहीं चली गयी तो बनवारी भगत के बगीचे का भूतहा इमली पेड़ भूतों से परेशान हो पानी में डूबने लगा. लेकिन भूत आखिर भूत थे – उन्होंने इमली पेड़ की जटाओं में बसेरा बनाया ताकि वे भीगने से बचे रहें. इस तरह वह डूबने से तो बच गया लेकिन उसे भूतों ने जहाज बना लिया और सभी बंगाल की खाड़ी की ओर चल पड़े. तीसरे दिन मिर्चाई धोबी

का मिट्टी का घर पानी में बह गया और वह निश्चय के एक कोने में अपनी गदही और भैंस जैसी नई नवेली बीवी के साथ जम गया. बारिश ख़त्म होने तक वह कपड़ों की जगह अपनी गदही और भैंस जैसी बीवी की सफाई करता रहा.

हर ओर पानी ही पानी – शेखर भैया निश्चय की बालकनी पर आलू को भूगोल और बादल के फटने का कारण समझाते तो रसीदा अपनी साइकिल सड़क पर नहीं बल्कि समंदर में चलाता. रसीदा के साइकिल की केवल घंटी दिखती, पैडल बेचारी भला कैसे दिखती ? उसे रसीदा अपने पांव से दबाए रखता. "बेचारी की नाक बंद हो गयी होगी" – आलू कुछ और सोच पाती इससे पहले शेखर भैया बड़े फूफा की तरह एक गंभीर निष्कर्ष पर पहुँचे –

"रसीदा मरेगा एक दिन और उसका फूला हुआ शरीर सीधे बंगाल की खाड़ी में गिरेगा."

"लेकिन उसकी साइकिल का क्या होगा" – आलू बचपन से ही एक विचारक रही है. जब सब कुछ बह रहा था, शेखर भैया का यह स्पष्ट मत था कि चाहे कुछ भी हो जाये निश्चय के आस पास का कुछ भी नहीं बह सकता, यहाँ तक कि आलू के कागज की नाव भी नहीं. इसी बीच एक दिन अचानक सूरज देव प्रकट हो गए. आलू ने गुपचुप शेखर भैया से पत्थर के पुल पर जाने की जिद की ताकि वह महादेव थान की तैरती गायें, चंडी माई की बहती जा रही लाल चुनरी देख सके. शेखर भैया को रसीदा अच्छा नहीं लगता था और वे उससे बात करना बिल्कुल पसंद नहीं करते थे. शिवपूजन काका को सब पता होता था और उन्हें मालूम था कि रसीदा की पगली माँ, जिसकी कभी शादी नहीं हुई, उसे ठाकुर जी का बेटा मानती थी क्योंकि ठाकुरद्वारे में ही भगवान के किसी बहादुर भक्त ने उस दुर्बल पगली को ठाकुर जी का प्रसाद दिया था. आलू की जिद पर अपनी नापसंदगी के बावजूद शेखर भैया ने रसीदा से बात की और छुप कर दोनों रसीदा की साइकिल पर सवार हो गए. आलू को फिर से साइकिल की पैडल पर दया आने लगी – बेचारी पानी में नाक दबाये डूबी पड़ी थी. दूर –दूर तक पानी ही पानी नजर आ रहा था. पत्थर के पुल पर पहुँच आलू अभी खुश हुई ही थी कि शेखर भैया का मुँह लटक गया. शायद उन्हें मिर्चाई धोबी की गदही का आशिक दिख गया था जो अपना पेट फुलाये पानी में करवट लिए बड़ी तेजी से आगे निकल गया. शेखर भैया अपना मायूस चेहरा लिए पत्थर के पुल के बीचो – बीच खड़े हो उस तरफ देखने लगे जहाँ बारिश से पहले अंसारी टोला था. अंसारी टोला मुर्गियों, बकरे व खत्तु कसाई के संग तैरता हुआ न जाने कहाँ चला गया. आलू ने शेखर भैया के चेहरे से अपनी नजरें हटा ली क्योंकि उसे मायूसी नामक संक्रामक रोग से डर लगता था. इससे पहले कि महादेव थान की गायें तैरती नजर आतीं, आलू को चंडी माई की चुनरी दिखी जो पुल के एक हिस्से को छूती हुई तैर रही थी. वह चुनरी को पकड़ने के लिए तेज भागी

लेकिन चंडी माई की चुनरी उससे तेज निकली और सहसा आलू की चीख ने पानी के कल – कल को पछाड़ा-

"शेखर भैया, बचाओ... बचाओ.."

चंडी माई की चुनरी उसे पानी में खींच रही थी और वह पुल के एक पत्थर को पकड़े चीख रही थी. चंडी माई की चुनरी के जोर के आगे शेखर भैया की पूरी कोशिश बेकार साबित हो रही थी. तभी शेखर भैया जोर से चीखे-

"रसीदा"

रसीदा, जो पत्थर के पुल के एक छोर पर अपनी भीगी साइकिल को नहला रहा था, साइकिल को लिए ही हवा की गति से उस पर झपटा और वह ऊपर आ गयी. लेकिन इससे पहले कि आलू अपने को संभाल पाती, उसे शेखर भैया के फफक कर रोने की आवाज आयी –

"रसीदा .... रसीदा....."

देखते – देखते रसीदा पानी में बहता हुआ दूर चला गया. हताश शेखर भैया पुल पर बैठे सिसक रहे थे और रह रह कर उधर देख रहे थे, शायद रसीदा पानी में साइकिल चलाता हुआ वापस आ जाय. लेकिन वह वापस कैसे आता उसकी साइकिल तो पुल पर ही छूट गयी थी. साइकिल की पैडल नाक खोल तेज सांस ले रही थी. आलू देर तक शेखर भैया को चुप कराती रही, तब शेखर भैया ने कहा –

"तुम भीग गयी हो; बीमार पड़ जाओगी, कपड़े सुखा लो. वह अब वापस नहीं आएगा."

धूप तेज थी; उसने पत्थर के पुल पर कपड़े सुखाये. उधर आँगन में फुआ अभी भी चीख रही थी –

"बड़ी अजीब है ये लड़की. अलका ! अलका ! कब तक धूप में सूखती रहेगी. चल नहा कर सो ले, रात भर की जगी है. शेखर का फोन आया था; वह रात के ग्यारह – बारह बजे तक पहुँचेगा."

****

-2-

"डी एम साहब, मैं सालों बाद घर लौट रहा हूँ. अगर मेरी गाड़ी इस रास्ते चली गयी तो आसमान नहीं टूट पड़ेगा !"

बाईस साल का एक जवान डी एम पटना से उलझा था क्योंकि जिस राह उसकी गाड़ी जानी थी प्रशासन ने उसे 'नो एंट्री' करार दिया था. 'नो एंट्री' क्यों लगाई गयी थी अथवा 'नो एंट्री' कब हटेगी – इसमें उस जवान की कोई दिलचस्पी नहीं थी. उसका तो बस एक तर्क था कि अगर उसकी गाड़ी उस रास्ते चली गयी तो कोई आसमान नहीं टूटने जा रहा. यही बात उधर फैजाबाद के जिला जज उत्तर प्रदेश सरकार के प्रतिनिधियों – डी. एम., सिटी मैजिस्ट्रेट और पुलिस कप्तान से कह रहे थे :

"अगर पिछले पैंतीस साल से हिंदू वहाँ पूजा अर्चना व मूर्ति दर्शन करते आ रहे हैं तो गेट नं. "ओ" और "पी" के तालों के खोल दिए जाने से कोई आसमान नहीं टूटने जा रहा..."

1 फ़रवरी 1986 – अपराह्न के चार से साढ़े चार बजे के बीच की अवधि – लोगों ने महसूस किया बूढ़े भारत ने अपनी झुकी कमर सीधी की. व्यवस्था को चुनौती मिली –

"..... डी. एम. साहब ! बात समझ में नहीं आ रही ??"

व्यवस्था ने चुनौती को पहचाना –

"सॉरी ! आप श्रद्धानंद बाबा के बेटे हैं – शेखर."

पहचानने के बाद व्यवस्था चुनौती को गले लगाती है और पुलिस की दो गाड़ियाँ शेखर को महागामा सुरक्षित पहुँचाने हेतु साथ हो जाती हैं. "नो एंट्री" में प्रवेश पर डी. एम. साहब ने उस व्यवस्था भंजक की अगुवाई की. बदले में घर आने का आमंत्रण मिला –

"डी एम साहब ! कभी हमारे गाँव आइये; हमारे घर !"

इधर शेखर पटना से महागामा के लिए निकल रहा था, उधर सवा पांच बजे भारत का नन्हा दूरदर्शन व बूढ़ा ऑल इंडिया रेडियो दुनिया को अयोध्या में खुलते द्वार का दर्शन करा रहे थे. मौसम परिवर्तन की हल्की सी सुरसुराहट से जिस इस्लाम का हाजमा बिगड़ने लगता उसने अगर अपने अस्तित्व को खतरे में पाया तो कौन सी बड़ी बात थी ? लेकिन बेचारे तुलसी एक समाचार की सच्चाई को जानने हेतु हनुमान की तलाश में भटकने लगे, जब कुछ लोग अपने को राम भक्त कहते हुए चिल्लाये –

"भगवान राम को मुस्लिम कारावास से मुक्त कराना है."

चूँकि तुलसी बहुत वृद्ध हो गए हैं और उनकी नजर काफी कमजोर हो गयी है, वे समझ नहीं पा रहे कि सृष्टि को पाप व राक्षसों से मुक्त कराने हेतु अवतरित राम कब और कैसे कैद हो गए. आखिर सर्वशक्तिमान भगवान राम को कैद करने की सामर्थ्य किसमें – तुलसी की दुविधा कैसे दूर हो ? यद्यपि सालों बाद घर आने की तमाम खुशियाँ थी, देश की ये घटनाएँ शेखर के दिलो - दिमाग पर छाती जा रही थीं. अकेले तुलसी ही नहीं शेखर भी दुविधाग्रस्त था और उसके गाड़ी की हेड लाईट की रोशनी अँधेरे को चिरती हुई आगे बढ़ती जा रही थी. गाँव के ओर – छोर पर हेड लाईट के अप्रत्याशित हमले से घबरा अँधेरा अपना मुँह किसी गड्ढे में छुपाने लगता तो सड़क के दोनों ओर कुछ महिलायें सर झुकाये खड़ी हो जातीं और उनके पांव के पास का लोटा या डब्बा मुँह फाड़े अपनी मालकिनों को निहारने लगता. अचानक ही एक ख्याल बिजली की तरह शेखर के दिमाग में कौंधा –

> "कितना अच्छा होता अगर सुलभ शौचालय वाले बिन्देश्वर पाठक अयोध्या में उस खुले द्वार से अंदर जाते और अपना जादू दिखाते तो महिलायें शाम के समय सड़क के दोनों ओर सिर झुकाये खड़ी नहीं दिखतीं. तब इस्लाम का हाजमा भी नहीं बिगड़ता और अयोध्या की गलियों में स्ट्रीट लाईट जलती जिसमें तुलसी की आँखें फिर से सच देखने व दिखाने में सक्षम हो पातीं."

शेखर की गाड़ी अपनी पर्याप्त गति से भागती चली जा रही थी और भारत का युवा प्रधानमंत्री समय से पूर्व इक्कीसवीं सदी में जाने की बात कर रहा था, शेखर रह – रह कर ग्यारह साल पीछे लौट जा रहा था. अतीत जहाँ कुछ चीजें अभी भी साफ थीं लेकिन कुछ चीजें धुंधली नजर आ रही थीं. शायद उन पर धूल की एक परत जम गयी थी. रह – रह कर शेखर धूल की परत को साफ़ करता कि सब कुछ साफ़ नजर आये. बहुत कोशिश के बावजूद वह नजर नहीं आया जिसे देख ठूँठा मास्टर हँस पड़ा था और उसकी हँसी रुकने का नाम नहीं ले रही थी. ठूँठे मास्टर को पहली व आखिरी बार उसी दिन लोगों ने हँसते देखा था. निश्चय के दक्षिण ठूँठे मास्टर का साम्राज्य था जहाँ जमीन पर नाक पोंछती रियाया में छक्के नब्बे दाम पचोत्तर की वजह से राणा प्रताप की सेना का जोश आ जाता. इस जोश से ठूँठे मास्टर की तीन पैरों व एक हाथ वाली गद्दी हिलने लगती और इससे पहले कि 'अट्ठे बीसा' का आगमन हो, रियाया ऊं ऊं कर सिसकने लगती. ठूँठा मास्टर कुछ देर निर्लिप्त भाव से बिलखती रियाया को देखने के बाद अपनी गद्दी पर ऊँघने लगता. शेखर निश्चय की छत से उस इकलौते साम्राज्य को लालच भरी निगाहों से देखता और कल्पना करता –

> 'काश मैं उस रियाया के साथ होता ! इससे पहले कि ठूँठा मास्टर एक्शन में आता, मैं ठीक उसके कान के पास अट्ठे – बीसा का बम पटकता. तीन पैरों पर टिकी

उसकी गद्दी धराशायी हो जाती और रियाया इस क्रांति के सफल होने पर मुक्त हो जी भर कर हँसती.'

शेखर की यह कल्पना कभी पूरी नहीं हो पाई, निश्चय के बच्चे का उस साम्राज्य में प्रवेश प्रतिबंधित था और तो और उस साम्राज्य में हो रहे जुल्म की चर्चा करना अथवा उसे देखने की सख्त मनाही थी. अक्सर शुभानी काका बुदबुदाते आते कि मालिक से कह कर इस ठूँठे मास्टर को गाँव के बाहर करवाना पड़ेगा, बच्चे बिगड़ जायेंगे' और उन्हें गोद में उठा कर नीचे ले जाते.

इधर कई दिनों से वह ऊपर नहीं जा पाया क्योंकि बड़े मामा के संग आलू आयी है. शेखर आँगन में आलू के साथ इतने तरह के खेल खेलता कि ठूँठे मास्टर के साम्राज्य का आकर्षण फीका पड़ने लगा. लेकिन उस दिन आलू ऊपर से आँगन में झांकते हुए चीखी –

"भैया.....ऊपर आओ.... ठूँठा मास्टर ! ?"

ठूँठे मास्टर के नाम ने शेखर के अंदर बिजली पैदा की और पल भर में वह ऊपर था. देखा रियाया फिर से ऊं – ऊं कर सिसक रही है लेकिन गद्दी पर ठूँठा मास्टर नहीं था. गद्दी एक तरफ औंधी पड़ी थी और ठूँठा मास्टर जमीन पर दोनों जाँघों के बीच हाथ से कुछ दबाये तड़प रहा था. रियाया उसे चारो तरफ से घेरे ऊं ऊं कर सिसक रही थी –

"मास्टर जी, मास्टर जी ! उठिए ना."

तभी वहाँ शुभानी काका गुस्से से लाल – पीले जोर से चीखते हुए नजर आये–

"साले ठूँठे, मैं काट डालूँगा. तू मुझे जानता नहीं....."

बेचारी रियाया आँख पोंछती हुई शुभानी काका को कातर निगाहों से देख रही थी. रियाया बेबस थी, उनके देश पर हमला हुआ था. उनका राजा जमीन पर तड़प रहा था और कोई कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं था. यद्यपि शेखर उस साम्राज्य की रियाया को ठूँठे मास्टर के जुल्म से आज़ाद कराना चाहता था, उसे शुभानी काका का हमला अच्छा नहीं लगा. वे जोर से चीखे –

"शुभानी काका... शुभानी काका ...!!!"

रियाया उसकी तरफ इस तरह देखती है मानों कोई देवदूत विपदा की इस घड़ी में आसमान से उतर रहा हो. शुभानी काका दृश्य से हट जाते हैं, ठूँठा मास्टर कराहता हुआ नन्हें देवदूत को देखता है. पहली दफा ठूँठे मास्टर से शेखर की नजर मिलती है. वह कुछ इशारा करता है जिसे शेखर नहीं समझ पाता है और वह आलू का हाथ पकड़ कहता है –

"चलो."

राजा की कराह व रियाया की सिसकी अभी गूँज ही रही थी कि शुभानी काका और शेखर आँगन में टकराए. शुभानी काका को पता था कि उनसे कुछ गलत हुआ है –

"छोटे मालिक, मेरी कोई गलती नहीं है. वह उल्टी सीधी बातें करता है..."

शेखर नाराज है. वह प्रस्तुत सफाई को अनसुनी कर आलू के साथ आँगन से बाहर निकल जाता है. पीछे से गिडगिडाती आवाज आती है-

"बड़े मालिक से मत कहियेगा. मेरी कोई गलती नहीं है, छोटे मालिक."

लेकिन शेखर कहाँ मानने वाला था. दो दिन बाद शुभानी काका कचहरी में सफाई दे रहे थे –

"बड़े मालिक मेरी गलती नहीं है. ठूँठा मास्टर हमेशा मुझसे उलझता रहता है. मुझे कटुआ....."

आज बड़े मालिक अपेक्षाकृत ज्यादा शांत व खुश थे. उन्हें गहराई में जाने की जरूरत समझी –

"चुप रहो ! कोई तुम्हें छेड़ेगा तो क्या तुम उसे मारोगे ? भई शांत रहा करो और शिवपूजन तुम उस ठूँठे को समझाओ."

शिवपूजन काका ने "जी मालिक" कहा और कचहरी बर्खास्त हो गयी. दूसरे दिन शेखर की आँखें छत से किसी को खोजती रही. पता चला ठूँठे मास्टर ने अपनी राजधानी बदल ली है.

शेखर की गाड़ी शायद काफी दूर निकल आयी थी. उसने लंबी साँस ली –

"चाय की तलब हो रही है. दरोगा जी ! कहीं नजदीक में चाय मिलेगी."

तभी खिड़की के पार सड़क किनारे 'अजगैबीनाथ लाइन होटल' पर नजर पड़ी, दरोगा जी चहके –

"लगता है सुलतानगंज आ गया, रोकना. इस लाइन होटल पर बहुत ही बढ़िया चाय मिलती है."

गाड़ी रुक गयी. दरोगा बहुत खुश नजर आ रहा था –

"साहब ! मेरी पोस्टिंग सुलतानगंज में थी. इस पवित्र माटी की पोस्टिंग से मैं धन्य हो गया हूँ. सच बताऊँ पुलिस में रहने के बावजूद अब किसी चीज की लालसा नहीं रह गयी है."

"हूं" – शेखर ने चाय का पहला घूँट लिया. दरोगा जी धार्मिक व्यक्ति हैं. वे अभी जारी थे. शेखर को तुरंत समझ में आ गया कि दरोगा जी को सुलतानगंज के बारे में बातें करना अच्छा लगता है – गैबीनाथ महादेव, एक सौ पांच किलोमीटर की नंगे पांव यात्रा और जाह्नु मुनि जिन्होंने एक ही घूँट में पूरी गंगा को निगल लिया था. भागीरथ के बहुत अनुनय विनय पर गंगा जाह्नु मुनि के जांघ से निकलती और इसी वजह से गंगा जाहन्वी भी कहलाती है.

"भैया, एक चाय और पिलाना." चाय वाकई अच्छी थी.

कुछ देर में गाड़ी अपने गंतव्य की ओर चल पड़ी जहाँ एक महिला अपने बेटे का इंतजार उसके रूप – रंग, कद काठी की कल्पना के साथ कर रही थी – ग्यारह साल का बच्चा आज जवान हो गया होगा. वहीं निश्चय की बैठक में कुछ लोग किसी बात को लेकर उलझे हुए थे.

बहुत देर के वाद विवाद के पश्चात यह स्थापित हुआ कि पुरस्कार व मेडल का मिलना किसी की महानता का सर्टिफिकेट नहीं हो सकता, उदाहरणस्वरूप महात्मा गाँधी का नाम क्या किसी मेडल अथवा पुरस्कार का मोहताज हो सकता है. अपने घर पधारे आगुन्तकों से निश्चय के मालिक ने अपने निश्चय को दुहराया –

"सिन्हा ! माना अब मेरे जाने का समय आ गया है. नए दौर की शुरुआत हो चुकी है लेकिन सम्मानित कर मुझे चुप कराने का मतलब ? सभी जानते हैं कुर्सियों और पुरस्कारों के सम्बन्ध में मेरी क्या राय रही है. बुढ़ापे में इतना कमजोर भी नहीं हो गया कि नौजवानी में खुद से किये एक छोटे से वायदे को न निभा सकूं."

"सर, इसका मतलब आपकी हम पर कृपा नहीं होगी."

"कृपा की बात नहीं है, सिन्हा ! तुम ईमानदार व मेहनती आदमी हो लेकिन कभी – कभी ओछी हरकत करने लगते हो. एक बात याद रखना लक्ष्य चाहे लाख उत्तम हो उसे प्राप्त करने के लिए गलत रास्ते नहीं अपनाने चाहिए. गलत तरीके से प्राप्त उत्तम लक्ष्य भी दूषित हुए बिना नहीं रह सकता. जरा सोचना तुम मुझे कनविंस करने के लिए पुरस्कार का एक ओछा प्रलोभन ले कर आ गए."

बैठक में कुछ देर चुप्पी रही. इसके बाद बिहार की बदहाली व सही नेतृत्व की चर्चा निकली. सब इस बात से सहमत थे कि वर्तमान नेतृत्व से बिहार में बदहाली बढ़ी है और स्थिति में सुधार हेतु कुछ किया जाना चाहिए. निश्चय के मालिक से कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं मिला लेकिन उन्होंने यह दुहराया कि वे सिन्हा को पसंद करते हैं और उसके नेतृत्व में बिहार के विकास की पूरी संभावना है. साथ ही उन्होंने कहा कि सिन्हा को अपने तौर तरीकों पर और मेहनत करने की जरुरत है, उचित वक्त आने पर वे आलाकमान से बात कर सकते हैं. लोग बातचीत के अंतिम नतीजों से हल्का महसूस कर रहे थे कि शेखर काल चक्र की सुई को रात के एक बज कर बीस मिनट पर टिकाते हुए दाखिल हुआ. पुत्र के आगमन पर पिता के चेहरे पर एक आसमानी आभा उतर आयी, उनकी नजरें पल भर के लिए मिलीं और दोनों चुप. उधर बैठक में लोग शेखर की अगुवाई और उसकी चर्चा में व्यस्त हो गए –

"शेखर कितने बड़े हो गए तुम." – सिन्हा जी ने गले लगाते हुए कहा. फिर लोगों से परिचय हुआ. पता चला केन्द्र सरकार के तीन मंत्री, अंग्रेजी मासिक 'इंडियन' के पत्रकार एस. फारुकी समेत एकाध उद्योगपति भी थे. सारे आगुन्तक शेखर से इतनी गर्मजोशी से मिले मानों वे सब उसी का इन्तजार कर रहे हों. लगभग सात आठ मिनटों में इस मुलाक़ात को विराम दे दिया गया –

"शेखर, अंदर जाओ. थके होगे और तुम्हारी माँ तीन दिनों से सोई नहीं हैं. आज तो उनका इन्तजार समाप्त होना चाहिए."

पिता – पुत्र की नजरें फिर से एक बार मिलीं और शेखर अंदर चला गया. आज उसे अपना घर बड़ा विशाल और सूना – सूना सा लगा कि सामने माँ खड़ी मिलीं. "माँ कितनी सुन्दर हैं' – इतने दिनों बाद माँ को देख अहसास हुआ. ग्यारह साल पहले उसे सुन्दर और असुंदर में फर्क मालूम नहीं पड़ता था, तभी तो आलू छेड़ती थी –

"शेखर भैया की शादी मिरचाई धोबी की गदही से कर देंगे, वह भी उन्हें सुन्दर लगती है."

यद्यपि इस बात की स्मृति ने शेखर को गुदगुदाया था, सहसा उन्होंने अपनी आँखों में कुछ नमी महसूस की. माँ ने भी आँखों में अनायास उमड़ते बादल को मुश्किल से संभाला –

"क्या खाओगे ?"

"कुछ भी."

"कुछ भी क्यों ! तुम बताओ, तुम्हारी पसंद का सब मिलेगा."

"लेकिन चलिए, पहले घर का पूरा चक्कर लगा लूँ. खाना बाद में खा लेंगे."

"इस समय. सुबह घूम लेना; अभी तुम थके होगे."

"नहीं माँ ! थकान कैसी. चलिए पहले घूम लें"

माँ अपने बेटे के संग खिंची चली जाती है. निश्चय का एक चक्कर यानी अतीत के पन्नों पर पड़ी गर्द से भी दो चार होना. पश्चिमी हिस्से के अँधेरे को दूर करने के लिए बत्ती जलाई जाती है – मकड़ियों की समृद्ध दुनिया पर हमला करना अनुचित समझ शेखर बत्ती बुझवा देता है. ह्रदय में एक टीस उठती है – "सद्दू चाचा !" अँधेरे का फायदा माँ बेटे दोनों उठाते हैं और एक दूसरे को अपनी चुप्पी से अहसास दिलाते हुए आगे निकल जाते हैं कि कोई खास बात नहीं.

"उधर कौन – कौन रह रहा है ? शुभानी काका और शिवपूजन काका कैसे है ?"

"शुभानी काका बिल्कुल पहले जैसे ही हैं. हाँ, उनका बडबडाना और गुस्सा थोड़ा बढ़ गया है. तुम्हारे इंतज़ार में अभी देर तक यहीं थे; आँगन से जा ही नहीं रहे थे कि बाबू जी ने डाँट कर घर भेजा. सुबह उन लोगों से मिल लेना. अहाते में एक छोटा सा गाँव बस गया है."

"वो मिरचाई धोबी और शिवपूजन काका ?"

"अच्छा ! शिवपूजन काका की तुम्हे खबर नहीं होगी. पिछले साल उनकी मौत हो गयी, उम्र भी तो काफी हो गयी थी. उनका बेटा डफली ड्राइवर हो गया है. चलो अब चलें, सुबह सबसे मिल लेना."

पुराने घर व पुरानी यादों से सशरीर मिल शेखर अपने कमरे में पहुँचा जिसे अलका ने अपनी फुआ के संग मिल पूरी श्रद्धा से सजाया था –

"क्या खूब ! गजब ! दुनिया भर घूम लो लेकिन अपने घर सा सुंदर कहीं नहीं !" – अपने कमरे के सोफे पर धम से पड़ते हुए शेखर ने कहा. निश्चय की हवाओं ने एक खास बात महसूस की – शेखर का सबके बारे में पूछना सिवाय एक के ? अगर अनायास था तो कोई बात नहीं, लेकिन यह सायास हुआ तो ? हवाओं ने अपने अंदर बड़ी बेचैनी महसूस की. इसी बीच निश्चय के मालिक भी अपने बेटे से मिलने कमरे में आये.

****

-3-

यद्यपि बिस्तर पर पहुँचते ही निद्रा देवी के आलिंगन ने स्वागत किया था, एक अनजान सिसकी की वजह से पल भर में सब कुछ बदल गया. कौन सिसक रहा है? पूरी कोशिश के बावजूद उसे अपने होश में फिर से नहीं सुना जा सका. हर तरफ सन्नाटा व्याप्त है; रह रह कर झींगुरनाद अवश्य गूँजता और यदा कदा रतनी कुतिया के बच्चे किकियाते. शेखर ने सिर झटका – हो सकता है नींद में कोई बुरा सपना आया हो; लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता क्योंकि निद्रा देवी के एक दफा रूठ जाने पर उन्हें मनाना बहुत कठिन था. कुछ देर रूठी देवी को मनाने के असफल प्रयास के पश्चात शेखर नीचे उतर आया. सिसकी का अहसास दिलो दिमाग की जगह पांवों पर हावी हो गया था. पांव की चपलता ने मन को झटका दिया – एक दीवार खड़ी हो गयी है. अहाते को घर के मुख्य भाग से अलग कर दिया गया है, शायद इसीलिए कि अहाता अब एक गाँव बन गया है. गेट के पास कुत्तों के संग ऊँघता चौकीदार उसकी पदचाप को सुन सावधान मुद्रा में खड़ा हो गया –

"छोटे मालिक !"

"हाँ भाई ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"अब्दुल जब्बार ! छोटे मालिक आपने पहचाना नहीं. कुरमी टोला याद है ? राजपुतवा मास्टर की चुटिया काटी थी बचपन में .."

"अरे यार, तू छंगुरी है. नाम तो ठीक से बता. तेरा इतना बढ़िया नाम – अब्दुल जब्बार किसने रखा?" – शेखर हँसा.

"छोटे मालिक, धीरे बोलिए अब तो मेरी शादी और बच्चे भी हो गए हैं. बाबा का चौकीदार हूँ – मेरी काफी इज्जत है. मुझे कोई छंगुरी नहीं कहता. सभी या तो फ़ौजी या अब्दुल्ला कहते हैं. देखिये अब मैं हमेशा जूता पहनता हूँ. सब भूल गए हैं कि मैं छंगुरी हूँ. अब आप मेरी पोल मत खोलिए." – छंगुरी भी हँसा.

"ठीक है छंगुरी; नहीं नहीं, फौजी ! फ़ौजी ठीक रहेगा. चलो, अहाते में घूम आयें"

"यहाँ गेट पर, छोटे मालिक ?"

"और सब कहाँ हैं ?"

"आज मैं ही हूँ"

"कोई बात नहीं, सुबह होने वाली है. गेट बंद है न, चलो."

एक पतली सी गली अहाते को घर के इस भाग से जोड़ती है.

"रजपुतवा मास्टर कैसे हैं, फौजी."

"बिल्कुल वैसे ही लेकिन अब वे चुटिया नहीं रखते."

"क्यों ? क्या हुआ ! अपनी चुटिया तो उन्हें जान से भी प्यारी थी."

"छोटे मालिक ! पिछले साल गरमी में उन्होंने कसम ली कि वे चुटिया नहीं रखेंगे. तभी से बेचारे खुद ही खुद बडबडाते रहते हैं. वैसे अभी भी वे पहले की तरह कानफोडू खर्राटे के साथ ही सोते हैं कि कुछ भी कर लो उन्हें पता नहीं चलेगा. तभी तो बगीचे में मैंने उनकी चुटिया काट ली थी और उन्हें पता तब चला जब उनके उठने पर बच्चे झुंड बना कर गाने लगे- 'गईलो ले गईलो; उड़ी गईलो रे टीकवा; टीकवा उड़ी गईलो...' कितना हँगामा हुआ था, कितनी गालियाँ बकी थीं मास्टर ने. याद है ! उसके बाद तो जब देखो रजपुतवा मास्टर की चुटिया कटने लगी; बस कटने लायक हो जाय. याद है न छोटे मालिक."

"हाँ छंगुरी, सॉरी यार फौजी ! लेकिन मास्टर ने कसम क्यों खा ली. वैसे बेचारे ने ठीक ही किया जब खेत का उजड़ना तय हो तो फिर उसमें बीज बोने का क्या फायदा." – शेखर हँसा.

"नहीं छोटे मालिक, ये बात नहीं है. पिछले साल तो गजब का बवाल हो गया. यकीन मानिए दंगा हो जाता लेकिन रजपुतवा मास्टर..... ! याद कीजिये बचपन में खाकी हाफ पैंट वाला, जो सुबह – सुबह घूमने निकालता था – महेंदर सिंह. महेंदर सिंह के अब ढेरों चेले हो गए हैं. पिछली गरमी जब रजपुतवा मास्टर आम के बगीचे में खर्राटे मार सो रहे थे, इस्माईल काका के बेटे मोईन ने उनकी चुटिया काट ली. नींद टूटने पर हमेशा की तरह फिर से गालियों की बारिश करनी शुरू कर दी –

'साले इस्माईलवा के पिल्ले ! तेरे खानदान का सर्वनाश होगा, हरामी के पिल्ले...'

तभी इस्माईल काका भी आ गए, मोईन को पकड़ चार छः झापड़ रसीद कर बोले –

'अरे बाबू साहब, पूरे खानदान के पीछे क्यों पड़े हो ?'

रजपुतवा मास्टर गुस्से में कुछ और बोल पाते तभी महेंदर सिंह अपने आठ दस चेलों के साथ इस्माईल काका पर टूट पड़ा –

'मादरजात, सालों, बाबरी की औलाद, दिमाग बहुत खराब हो गया है. हिंदुओं की चोटी और जनेऊ का मतलब समझते हो. सालों जान बूझ कर बदमाशी; लेकिन अब ये दादागिरी नहीं चलेगी. ला तो सलाई, कटुए की दाढ़ी जलायें तो देखे कैसा लगता है.'

एक ही लम्हे में वहाँ का माहौल बदल गया. बच्चे सहम कर इधर उधर भाग गए और रजपुतवा मास्टर को तो मानों काठ मार गया – एक दम चुप. उधर मुसलमानी टोले से मर्द, औरत तेजी से बगीचे की तरफ दौड़े. तभी महेंदर सिंह को उसके एक चेले ने माचिस दी और वह उसे सुलगाने की कोशिश करते हुए चीखा – 'साले कटुए'. इससे पहले कि सलाई की तीली सुलग पाती रजपुतवा मास्टर में राजपूतों के खून का उबाल आया और वे बिजली की तरह इस्माईल काका को अपने शरीर में समेट महेंदर सिंह के टेंटुये को जोर से दबाते हुए चीखे –

"महेंदरा".

फिर जोर का धक्का दिया जिससे महेंदर सिंह धडाम से गिरा. अब बारी रजपुतवा मास्टर की थी, यकीन मानिए, छोटे मालिक ! सबने एक शेर की दहाड़ पहली बार सुनी थी –

'महेंदरा ! हिन्दू – मुसलमान को बीच में मत ला साले. बेचारे बच्चों ने थोड़ी सी मौज क्या कर ली कि साले का हिन्दू धरम गया काम से. अगर इस चोटी और जनेऊ में धरम वास करता है तो महेंदरा ! ये राजपूत न तो अब जनेऊ पहनेगा न चोटी रखेगा. धर्म की बात करता है साला अधनंगा भांड, मैं तेरी जात जानता हूँ.'

शेखर ने अँधेरे को छंटते देखा, अब सब कुछ नजर आ रहा था – अहाते में मिरचाई धोबी अपनी गदही पर कपड़े लादता हुआ.

"तू और तेरी गदही बिल्कुल नहीं बदले मिरचाई."

"छोटे मालिक !"

अहाते में खलबली मच गयी. आँख मलते, लुंगी सँभालते लोगों; घूँघट व आँचल संभालती महिलाओं के बीच उन्होंने आग के एक गोले को क्षितिज पर निकलते देखा ही था कि सिसकी की आवाज फिर से आयी –

"क्या हुआ ? कौन है ?"

मिरचाई धोबी एक झोपड़ी की तरफ इशारा करते हुए धीरे से बोला –

"शुभानी काका !"

"क्या हुआ शुभानी काका को ?" – शेखर तेज दौड़ा. हमेशा बडबडाने वाले शुभानी काका अपनी झोपड़ी के छप्पर को एक टक ताकते हुए बिस्तर पर चित्त पड़े हैं. झोपड़ी के दूसरे भाग से रह – रह कर सिसकी की आवाज आ रही थी.

"शुभानी काका ! मैं शेखर."

"हूं" शून्य से एक शब्द उतरा.

"काका ! उठिए, छोटे मालिक आये हैं. संभालिए अपने आपको." मिरचाई धोबी शुभानी काका को जोर से हिलाते हुए बोला. लेकिन "हूं" कह कर संभलने की कोशिश में वे लुढ़क गए.

"अरे क्या हुआ भाई ?" कहते हुए शेखर उनके पास बिस्तर पर बैठ गया. अहाते के लोगों ने नोट किया पहली बार मालिक के घर का खून उनके बिस्तर पर बैठा था और बहुत दिनों तक इस बात की चर्चा होती रही कि उस दिन छोटे मालिक रो पड़े थे.

"मिरचाई, देखो भाई. शुभानी काका ! काका.....!"

झोपड़ी के दूसरे भाग से आ रही सिसकी बंद हो गयी और देखते - देखते वहाँ भीड़ लग गयी –

"शुभानी काका नहीं रहे."

निश्चय की दीवारें भी नम हुईं, माँ ने भरी आँखों से निश्चय के मालिक से पूछा –

"आखिर हमेशा इतनी सख्ती क्यों बरतते हैं ? कल रात अगर वह शेखर के इंतज़ार में रुक रहे थे तो क्या जरुरत थी डांटने की, बेचारे..."

शेखर का दिमाग भन्ना उठा, रात को एक सिसकी ने नींद से ऐसा जगाया कि अब चारो तरफ से हर किसी के सिसकने की ही आवाज आ रही थी. अंततः मिरचाई से पूछा –

"अंदर कौन है जो रो रही थी ?"
"शुभानी काका की इकलौती बेटी शब्बो है."

"शब्बो, जिसने अपनी मर्जी से सिलहन के किसी लडके के साथ शादी की थी."

"जी हाँ !"

"लेकिन सुना है, शब्बो शादी के बाद कभी भी यहाँ नहीं आयी."

"जी छोटे मालिक ! देर रात या सुबह न जाने कितने बजे रोती – बिलखती जान बचा कर वापस आयी है. बेचारी को आपने देखा नहीं है. चेहरे और शरीर के जख्म ऐसे हैं मानो किसी कुत्ते या जानवर ने काटा हो. वो कमीना तो इसकी जान ही ले लेता."

"क्या हुआ था और मामला ऐसा था तो आने के साथ ही निश्चय में खबर भेजनी चाहिए थी?

"मैं जा रहा था लेकिन शुभानी काका ने मना कर दिया. कहा छोटे मालिक थके हुए आये होंगे. सुबह बताएँगे."

शेखर ने आँख के नम कोर को साफ़ किया –

"शब्बो ने कुछ बताया कि उसके साथ क्या हुआ ?

"शादी के इतने साल बाद इसके आदमी ने तलाक दे दिया और चार बच्चों की एक औरत को अपने घर ब्याह कर ले आया. घर से निकाले जाने के बावजूद शब्बो वहीँ पड़ी रही कि वह जाये भी तो कहाँ – बूढ़ा बाप कैसे व क्या खिलायेगा, उसे. वहीँ घरों में झाड़ू – पोछा कर दिन काट रही थी लेकिन कल तो हद हो गयी....."

शुभानी काका का जनाजा उठा, बड़े मालिक ने निश्चय के दरवाजे तक आ उन्हें अंतिम विदाई दी और छोटे मालिक ने कब्र तक उन्हें कंधा दिया.

वर्षों बाद घर वापसी के साथ ही ये सब क्या हो रहा है. बचपन से बड़े होने में बहुत कुछ बदल चुका है और बहुत कुछ तेजी से बदल रहा है. शुभानी काका को दफना कर वापस आने पर शेखर ने अपने कमरे को एक बार फिर से निहारा –

"क्या बात है, अलका अचानक क्यों चली गयी ?"

****

-4-

शेखर के कानों में सिसकी अभी भी गूँज रही थी, इसी बीच रह – रह कर उसे अलका की याद आ जाती. शुभानी काका को अंतिम विदाई देकर निश्चय के बड़े मालिक दिल्ली के लिए रवाना हो गये, जहाँ से उन्हें एक सेमिनार में भाग लेने अमेरिका जाना था. जाने से पहले उन्होंने डॉक्टर से स्वयं बात कर कहा कि वे शब्बो के ठीक हो जाने तक अहाते में रहें. धीरे – धीरे माहौल में सिसकी की तीव्रता व टीस दोनों कम होने लगी लेकिन शेखर के अंदर की व्याकुलता कम होने का नाम नहीं ले रही थी. रह – रह कर उसकी याद आ जाती और सब कुछ व्यर्थ लगने लगता; तभी कानों में एक सिसकी गूँजती. कब तक ऐसा चलता रहेगा. केवल मूक दर्शक बन कर जीते रहने का कोई आशय नहीं, कुछ तो करना होगा.

जी हाँ ! कुछ तो करना होगा ! एक फरमान जारी हुआ और सेनानी कूच कर गये.

शब्बो का पति – मजहर. शब्बो बचकर जैसे ही महागामा पहुँची, मजहर को किसी अनहोनी का आभास हो गया. इसीलिए वह सिलहन छोड़ कहीं 'अंडरग्राउंड' हो गया था लेकिन उसे सेनानियों के 'ग्राउंड' के 'अंडर' देख पाने की जादुई शक्ति का अंदाजा नहीं था. फरमान जारी होने के दूसरे दिन शाम में उसे कहलगाँव के मदरसे में धर लिया गया. मदरसे के दो सौ छात्र व उसका मुखिया, जिसकी पहुँच दिल्ली की बड़ी मस्जिद तक थी, सामने खड़े थे. सेनानियों के प्रमुख ने युद्ध के बिगुल व संधि की बात एक साथ की –

> "काजी जी ! निश्चय से यह फरमान निकला है. आप समझ रहे हैं न ! सोच लीजिये और निश्चिंत रहिये, कुछ बुरा नहीं होगा. उचित फैसला ही होगा."

काजी जी ने अपने विश्वासपात्रों के संग मंत्रणा की. सेनानियों के प्रमुख ने घड़ी देखी – ठीक तेरह मिनट बाद काजी जी बाहर आये. तय हुआ कि मजहर के साथ परसा मस्जिद के मौलवी सिद्दिकी, मदरसे से मौलाना तनवीर और दिग्घी के डॉक्टर अजीज भी जायेंगे.

महागामा से लगी गेरुआ नदी के किनारे लगभग साढ़े चार एकड़ के क्षेत्र को सन चालीस में पत्थरों की दीवार से घेर हिंदुस्तानियों ने अपनी कचहरी बनाई और इसी कचहरी से हिन्दुस्तानियों ने अगस्त – सितम्बर 1942 में लगातार पाँच हफ्ते तक अपनी सरकार चलाई थी. आजादी के बाद जनता – जनार्दन की इस कचहरी में पटना से लेकर दिल्ली तक के सभी बड़े नेता अपनी हाजिरी बजाते रहे हैं. कचहरी में सुबह के साढ़े सात बजे भगोड़े मजहर को पेश किया गया जिसके बचाव के लिए लंबी दाढ़ी वाले तीन हाजी और साक्षी के रूप में जनता पहुँच चुकी थी. कचहरी में फैसले की सुनवाई के लिए जनता के जनार्दन

अपने आसन पर विराजमान हुए – नए और युवा जनार्दन का स्वागत हुआ. फिर दिग्घी के डॉक्टर अजीज ने बात की शुरुआत की –

"शेखर साहब, आपको यहाँ देख हमलोगों को कितनी खुशी हो रही है बता नहीं सकते. विलायत में इतने साल रहने के बाद भी अपने वतन और इस छोटे से गाँव में आकर इसके दुःख – दर्द में इतनी दिलचस्पी देख कर अच्छा लग रहा है."

"डॉक्टर साहब, हम कहीं भी रहें पास या दूर, देश में या परदेश में – अगर आँखें खुली हो तो जख्म दिखेंगे, कान खुले हों तो कराह सुनाई पडेगी. यहाँ अफ़सोस की बात यही है कि हमारी आँखें और कान दोनों कमजोर हो चुके हैं. बस इसीलिए पड़ोस की सिसकी सुनाई नहीं पड़ती. भगवान न जाने क्यों बहरों और अन्धों की तादाद बढाता ही जा रहा है."

हाजियों की भृकुटि तन गईं, वे शब्दों के निहितार्थ समझ सकते थे. वैसे भी सदियों से अर्थ की जगह अनर्थ और अनर्थ के मुताबिक काम करना ही धार्मिकता का पर्याय रहा है. कचहरी की कार्यवाही शुरू हुई –

"आरम्भ से ही इसके चाल – चलन अच्छे नहीं थे."

"इसीलिए तो होश संभालते ही आपके संग भाग गई. आपका दिल जनता है कि आपके सिवाय इस पगली के सपने में भी कोई नहीं आया. आपने मेरे चाल – चलन में क्या कमी देखी ?"

"अब बंद करो ये तमाशा. मैं तुम्हे तलाक दे चुका हूँ."

"लेकिन तलाक देने के साथ ही तो तमाशे की शुरुआत हुई है. इसे अब खत्म भी तो आप ही करेंगे."

"जरूरत से ज्यादा बोलने के कारण ही तो पिटी थी सा..." – मजहर की जुबान फिसलने ही वाली थी. संभलते हुए उसने पूछा –

"आखिर तू चाहती क्या है ?"

"मेरी तो दुनिया बर्बाद हो गई है, मैं क्या चाहूंगी. मैं तो केवल छोटे मालिक के कहने पर यहाँ आ गई. उनका जो फैसला हो."

मदरसे के मौलाना तनवीर को मौके की तलाश थी, उन्होंने मधुर लेकिन स्पष्ट लहजे में अपनी बात रखी –

"बेटा शब्बो, फैसला तो तुम्हीं दोनों को करना होगा. वैसे भी ऐसे मसले पर इस्लाम व कुरआन मजीद ने साफ-साफ इंसाफ किया है, उसी इंसाफ के तहत सब होगा. शेखर साब माफ करें; लेकिन शब्बो ! इसमें फैसला करने का हक शेखर साब को नहीं हो सकता."

"मौलाना जी, मैं ज्यादा नहीं जानती. मुझ जाहिल औरत के पास समझ भी कम है. अभी होश संभाला ही था कि इस इंसान को खुदा समझ बैठी. अब यही खुदा...." सिसकी ने पल भर के लिए वक्त की टिक – टिक को रोका और शब्बो ने अपने आपको संभाला –

"रही बात छोटे मालिक के फैसले की तो पचासों कोस के गाँव गवाही देंगे कि हमारा इंसाफ तो इसी घर – परिवार ने किया है और इस कचहरी के सिवाय हम किसी दूसरी कचहरी को नहीं जानते."

लोगों में खुसर – पुसर होने लगी और भीड़ से आवाज आने लगी कि सालों के रिवाज के मुताबिक़ फैसला करने का हक केवल बड़े मालिक और उनके न रहने पर छोटे मालिक का है. उनके सिवाय और कौन फैसला करेगा ? भीड़ की आवाज को दबाते हुए गम्भीर और सख्त आवाज में मौलाना तनवीर बोले –

"शेखर साब, आप तो देश के हालात से वाकिफ हैं. शाहबानो मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलटने की तैयारी तो दिल्ली की सरकार भी कर रही है. मामला संगीन है, सेंसिटिव है. मेरी गुजारिश है आप सोच – विचार लें, कम से कम अपने अब्बू जान, बाबू जी से ही पूछ लें. एक मुसलमान के घर का मामला है और इसका फैसला इस्लामी तौर तरीके से ही होना चाहिए. अब तक जो हुआ सो हुआ, अब ऐसे मसले में मुसलमान किसी भी गैर मुसलमान का दखल बर्दाश्त नहीं करेंगे. इसीलिए जनाब, आप इसमें दखल न ही दें तो बेहतर होगा."

लोगों में इस बात ने बेचैनी पैदा की ही थी कि कचहरी में खड़ा आरोपी मजहर फुफकारा –

"मौलाना साहब ! इस्लाम व अल्लाह के लिए हम सब कुछ कुर्बान कर सकते हैं, अपनी जान भी. इसीलिए यह मुसलमान कभी भी इनके आगे नहीं झुकेगा."

भीड़ की बेचैनी अब बर्दाश्त के बाहर हो गई और तरह-तरह की भयानक आवाजें कचहरी में गूँजने लगी. तभी शेखर के चेहरे पर एक अबूझ मुस्कान पल भर के लिए उभरी –

"चुप रहिये ! मैंने कहा शांत हो जाइए. अरे शांत हो जाइए, एक दम शांत. अब मेरी बात सुनिए. मौलाना तनवीर, इस मामले में मेरा कोई दखल नहीं है लेकिन इंसाफ और इंसानियत का दखल तो होना चाहिए और हम सबको लगता है इंसाफ व इंसानियत से आप सबों को भी कोई एतराज नहीं होगा."

मौलाना तनवीर ने जवाब दिया –

"इंसाफ व इंसानियत से किसे एतराज हो सकता है ? यही तो मजहब सिखाता है लेकिन इंसाफ व इंसानियत का सर्टिफिकेट जारी करने का ठेका क्या आपने ही ले रखा है ?"

मजहर भी जोर से दहाड़ा –

"साहब. यहाँ ये सब आपके गुलाम हो सकते हैं और वे भले ही आपको अपना मालिक मानते हों, मेरे जैसे सच्चे मुसलमान का एक ही मालिक है. बस इसीलिए आपके किसी फैसले या हुक्म को चाहे कुछ भी हो जाए मैं नहीं मान सकता."

कचहरी में पल भर के लिए सन्नाटा छा गया – आज तक किसी की मजाल नहीं थी कि कोई श्रद्धानंद बाबा या उनके खून के सामने इतनी जोर से चीखे. सहसा आसमान को चीरती आवाज गूँजी –

"इनकी इतनी हिम्मत ! सब जल कर राख हो जाएगा."

छोटे मालिक के चेहरे पर एक रक्ताभ उभरी. उन्होंने भीड़ की तरफ हाथ लहराया और अपनी अंगुली होठों पर रखते हुए चुप होने का संकेत दिया. कचहरी में सन्नाटा छ गया. बीच सन्नाटे में वे अपनी कुर्सी से उठे और मंच से नीचे उतर गये. नीचे बैठे तीनों इस्लामी विद्वानों, परसा मस्जिद के मौलवी सिद्दिकी, कहलगाँव मदरसे के मौलाना तनवीर और दिग्घी के डॉक्टर अजीज, के पास जाकर पूरी श्रद्धा और विनम्रता से कहा –

"मुझे माफ करें. मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ है. धार्मिक मामलों में मेरा दखल ठीक नहीं है. इसीलिए आपसे आग्रह है कि इस मसले में आप लोग ही फैसला करें."

फिर मजहर की तरफ मुखातिब हो बोले –

"भैया मजहर, अब तो ठीक रहेगा."

भीड़ में फिर से खुसर – पुसर की लहर दौड़ी और सब्बो की सिसकी ने शेखर के अंदर फिर से एक सिहरन पैदा की. उसने कहा-

"शब्बो ! अब शांत हो जाओ. फैसला कोई भी सुनाए – इंसाफ जरुर मिलेगा."

थोड़ी देर के मान – मनौवल के बाद तीनों इस्लामी विद्वान मंच पर आसीन हुए लेकिन उनके मंच पर बैठते ही उत्तेजित भीड़ चिल्लाई –

"छोटे मालिक ! इस कचहरी की एक परम्परा रही है. हम इसके साथ हो रहे खिलवाड़ को बर्दाश्त नहीं कर सकते."

शेखर ने भीड़ को शांत कराते कहा –

"हर परंपरा अच्छी ही हो – यह सच नहीं. बदलते वक्त के साथ परम्पराओं को भी बदल जाना चाहिए. आप शांत हो जाइए और सहयोग कीजिये. यहाँ इंसाफ ही होगा."

तभी मिरचाई धोबी की बारह साल की बेटी फुसफुसाई –

"पंच परमेश्वर होता है चाहे वह अलगू चौधरी हो या जुम्मन शेख"

बात आगे बढ़ी. शेखर के आग्रह पर उन्हें इस बात की इजाजत मिल गयी कि वे शब्बो के पक्ष को सामने रखेंगे यानी उसकी वकालत कर सकते हैं. शेखर ने बोलना आरम्भ किया –

"मौलाना साहब ! एक औरत के चाल चलन पर आरोप लगाया गया है. इस आरोप को सिद्ध करने के लिए जनाब मजहर के पास क्या चार गवाह हैं ?"

किसी को कुछ समझ में नहीं आया लेकिन इस बात से मंच पर आसीन विद्वानों के चेहरे पर परेशानी की लकीरें साफ दिखीं –

"कैसी बात करते हैं, शेखर साहब. इस छोटी सी बात को तूल न दें. इन जाहिलों की जुबान यूँ ही फिसल जाती है.

"आप दीन की दुहाई देने वाले लोग हैं. कृपया संभल कर बोलें, ईमान वाले लोग जाहिल नहीं होते. आप तय कर लें जनाब मजहर क्या हैं और भैया मजहर क्या तुम्हारे पास इस बात के चार गवाह हैं कि शब्बो नामक महिला का चरित्र ठीक नहीं है."

"मुझे गवाह की क्या जरूरत है ? मैं जानता हूँ." – मजहर चीखा.

इस पर शेखर मंच की तरफ मुड़ा –

"तनवीर साहब, क्या फैसला है आप ही सुना दें."

भीड़ में फिर खुसर – पुसर शुरू हो गई. मंच पर पसरे सन्नाटे को देख शेखर ने अपनी बात फिर शुरू की –

"चलिए, मैं ही उन आयतों को पढ़ता हूँ जो आसमान से मदीने में उतरी थी –

'जो लोग सतवंती स्त्रियों पर कलंक लगायें फिर चार गवाह लेकर न आयें, उनको अस्सी कोड़े मारो और उनकी गवाही कभी स्वीकार न करो.'

डॉक्टर अजीज ने बात संभालने की कोशिश की –

"शेखर साहब, यह आदेश तीसरे आदमी पर लागू होता है. यहाँ तो घर की बात है"

"ना... ना.. डॉक्टर साहब नहीं ! अभी थोड़ी देर पहले इस आदमी के संग आप लोग भी दावा कर रहे थे कि तलाक हो जाने के बाद सब कुछ खत्म. फिर घर कहाँ और अपने कहाँ ? अब तो यह तीसरा या गैर आदमी ही है और इस्लामी इन्साफ के मुताबिक़ या तो ये चार गवाह लाये या फिर इसे अस्सी कोड़े लगने चाहिए."

डॉक्टर अजीज अभी भी बिगड़ती दशा को सुधारने की कोशिश में थे –

"शेखर साब ! सब जानते हैं आप का घर ज्ञान का भंडारा है. इन गवारों को इतनी समझ कहाँ."

शेखर अब किसी और मूड में था, 'ऑफेंस इज द बेस्ट डिफेंस' –

"गवांरपने की नहीं, इंसाफ की बात है और अभी तो बात की शुरुआत हुई है. फैसला तो आपको ही करना है."

"आप हद से गुजर रहे हैं. अपने दरवाजे पर बुलवा अपनी झूठी ताकत की शान दिखाना उचित नहीं." – मौलाना तनवीर थोड़े गुस्सैल थे, लेकिन डॉक्टर साफ़ साफ़ अपने आपको चक्रव्यूह में फंसते देख रहे थे. उन्होंने मौलाना तनवीर की कलाई दबा कुछ इशारा किया और बोले-

"शेखर बाबू, आप चाहते क्या हैं ?

"साहब ! मैं क्या, यहाँ इतने लोग क्यों इकठ्ठे हुए हैं – यह भी बताना पड़ेगा."

"मगर अब तो जो होना था, हो चुका. तलाक हो जाने के बाद बताइये बचता क्या है ? दोनों अपनी – अपनी जिंदगी...."

"वही तो नहीं हुआ. डॉक्टर साहब ! आप लोगों का जीवन बचाते हैं. सच – सच बतायें क्या यहाँ तलाक हुआ है? मौलाना तनवीर ! मदरसे का काम है रोशनी लाना. कृपया आप बतायें कि तलाक हुआ था ?"

शेखर के बार – बार तलाक की बात ने शब्बो को फिर से रुला दिया –

"छोटे मालिक, रहने दें. मैं जाती हूँ. कहीं भी कमा – खा लूंगी. जिंदगी निभ जायेगी. तलाक तो हो ही चुका, अब इसे कैसे झुठला सकते."

छोटे मालिक को शायद शब्बो की बात सुनाई नहीं पड़ी. वे धारा प्रवाह जारी थे –

"अगर कोई गलती हो तो आप सुधारेंगे. मैं एकाध आयतें पढ़ रहा हूँ जो मदीने में उतरी थीं –

"जब तुम लोग स्त्रियों को तलाक दो तो उन्हें उनकी इद्दत के लिए तलाक दिया करो और इद्दत के समय की ठीक – ठीक गणना करो और अल्लाह से डरो जो तुम्हारा प्रभु है. न तुम उन्हें उनके घरों से निकालो और न वे स्वयं निकलें ..... उनको इद्दत की अवधि में उसी जगह रखो जहाँ तुम रहते हो और उन्हें तंग करने के लिए उनको न सताओ.'

बहुत देर से खामोश परसा मस्जिद के मौलवी सिद्दकी से अब नहीं रहा गया –

"जनाब ! अब हमें एक गैर मुस्लिम बच्चे से इस्लाम और कुराने पाक की तालीम लेनी होगी. आप सीधे – सीधे प्वाइंट पर क्यों नहीं आते ? कुराने पाक की आयतों को इस तरह पढ़ने का मतलब ?"

"मौलवी साहब ! वास्तव में मैं बच्चा ही हूँ. बस इसीलिए मैं कुराने पाक की आयतों का मतलब आपसे समझना चाहता हूँ क्योंकि मैंने जितना समझा है उसके मुताबिक एक असहाय औरत पर कोई मुसलमान जुल्म कैसे कर सकता है जबकि कुराने पाक ने सब कुछ साफ़ कर दिया है. मौलवी साहब ! चूँकि आपको सब मालूम है आप ही बताएं गर्भवती औरत के लिए इद्दत कितने दिनों की होती है ?"

मिरचाई धोबी की तरह कई लोग एक साथ चौंके और मुँह से निकला – "पेट से." तभी शब्बो की डरावनी सिसकी ने फिर से जन्म लिया. मंच पर बैठे डॉक्टर अजीज भी चौंके –

"प्रेगनैन्ट ! कौन है प्रेगनैन्ट ? शब्बो ?"

"प्रेगनैंट है नहीं. थी डॉक्टर साहब ! यही तो दुःख की बात है कि हर घड़ी इस्लाम के लिए कुर्बानी की दुहाई देने वाला मुसलमान अपनी गर्भवती बीवी को तलाक देते समय इद्दत का क्या ख्याल करता, वह तो नन्ही जान की जान ही ले लेता है और एक बात. शब्बो मेरी बहन है लेकिन मेरी हिम्मत नहीं है कि शब्बो की शक्ल देख सकूं, उसके चेहरे से नकाब हटवा सकूं. आप लोग पिता समान हैं, देखना चाहेंगे उसकी शक्ल ? चेहरे को किसी चाकू या हथियार से नहीं बल्कि अपने दाँतों काटा है; चबाया है इस जानवर ने..."

इतनी देर शांति और धीरज से बात करने वाले शेखर का चेहरा तमतमा उठा और शरीर के साथ बोली कांपने लगी. वह चुप हो गया और मंच के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया. भीड़ में एक सनसनी सी फ़ैल गई, भीड़ का धीरज समाप्त होता नजर आने लगा –

"बेचारी ! शादी के इतने सालों बाद पेट से....!"
"कमीना राक्षस है."
"हरामी ऐसा नहीं था लेकिन मदरसे की संगत में....."
"साले को काट डालो, साला हत्यारा..."

लेकिन इससे पहले कि भीड़ जंगल का क़ानून लागू करने आगे बढ़ती, शेखर चीखा –

"खबरदार ! चुप... बिलकुल चुप ! एकदम चुप ! और कोई आगे नहीं बढ़ेगा. सुनिए ! आगे नहीं बढ़ना है. जिसे यहाँ शांत रहने में दिक्कत हो रही हो वो तुरंत कचहरी से बाहर चले जाएँ."

मजहर की जान सूखती जा रही थी कि निश्चय के सेनानियों ने उसे सुरक्षा कवच प्रदान किया. वैसे सबसे बड़ा कवच शेखर की दहाड़ थी. मंच पर भी एक सन्नाटा छा गया. किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि अब आगे क्या बोलें.

कुछ देर बाद शेखर ने मंच की तरफ देखा. डॉक्टर अजीज को सबसे ज्यादा सदमा लगा था –

"शेखर बाबू, अगर ऐसा है तो इसे सजा..."

इससे पहले कि डॉक्टर अजीज अपनी बात पूरी कर पाते परसा मस्जिद के मौलवी बोल पड़े –

"लेकिन शेखर बाबू, मजहर का भी तो पक्ष सुन लेना चाहिए. उसके बाद जो भी हो उचित फैसला होगा."

उग्र भीड़ की उन्मादी लहर के कारण मजहर का गला सूख गया था. वह बोल नहीं पा रहा था. शेखर के इशारे पर निश्चय के एक सेनानी ने उसे पानी पिलाया. मजहर फफक फफक कर रोने लगा. तब मौलाना तनवीर ने दिलासा दी –

"मजहर, घबराओ नहीं, सच बोलो."

मजहर का रुदन जारी था –

"पता नहीं, मेरी जान बचे या न बचे; लेकिन बाप रे बाप ! यहाँ कैसी – कैसी बात हो रही है ? अल्लाह कसम. शब्बो बाँझ है, मौलाना साहब. वह पेट से हो ही नहीं सकती. मैं मानता हूँ उसके साथ थोड़ी मार – पीट हो गयी थी लेकिन अपने ही खून का कत्ल ... हे खुदा. आप जानते हैं मैं पाँचों वक्त नियम से नमाज पढ़ता हूँ. एक नमाजी पर ऐसे इल्जाम.... खुदा देख रहा है."

"शेखर बाबू ! अब आप बताये, इस आदमी का बयान तो कुछ और है."

शेखर ने कुर्सी पर बैठे – बैठे इशारा किया, छंगुरी अर्थात फ़ौजी कचहरी के गेट से बाहर निकल गया. लोगों के लिए एक – एक पल का इंतजार एक – एक सदी की सख्त सजा के बराबर लगने लगी. उसके ऊपर खुसर – पुसर की मनाही के कारण भी दम घुटने लगा.

लोगों को सदियों की सख्त सजा से मुक्त कराने के लिए थोड़ी ही देर में फ़ौजी दो लोगों के साथ कचहरी में वापस आया. डॉक्टर अजीज ने एक को पहचाना –

"डॉक्टर साहब, आप यहाँ?"

"जी" कह कर डॉक्टर साहब बैठ गए.

आये हुए दो लोगों में से एक वृद्ध महिला थी. उसकी तरफ इशारा कर डॉक्टर अजीज ने शेखर से पूछा –

"शेखर साहब, आप कौन हैं ?"

शेखर ने जवाब दिया –

"भैया मजहर, तुम बताओ."

"मेरी माँ है." – मजहर ने लोगों की बढ़ती उत्सुकता को शांत किया.

"तुम्हारी माँ ! ! !"

तभी मिरचाई धोबी की बेटी के जुबान से कुछ फिसल कर कचहरी में गिरा – "पिन ड्रॉप साइलेंस". इस "पिन ड्रॉप साइलेंस" में मजहर की माँ, जो अभी थोड़े दिनों पहले तक शब्बो की सास थी, ने रह – रह कर सुबकते हुए बताया कि किस तरह मजहर शब्बो के पेट और उदर के निचले हिस्से पर लगातार लात मारता रहा था. अंत में वह चीखा था – "हरामजादी ! माँ बनने का बड़ा शौक था." इलाज कर रहे डॉक्टर ने भी इस बात की पुष्टि की कि – "गर्भ हत्या के लिए इरादतन हमला किया गया था." अंत में शेखर कुर्सी से उठा, कचहरी में बैठे जनता –जनार्दन से नजरें मिली और फैसला आना शुरू हो गया-

"इसके पेट पर भी लगातार तब तक लात मारी जाय जब तक ...."
"इसे जिंदा फांसी ....."
"इस जानवर को भी इस्लामी क़ानून के मुताबिक ही सजा देनी....."

शोर बढ़ता चला गया और शोर में मौलाना तनवीर बुदबुदाए – "कुछ धोखा है" लेकिन डॉक्टर अजीज ने वक्त की नब्ज के मुताबिक़ फैसला सुनाया –

"मजहर ने सरासर जुर्म किया है, जिसकी सजा उसे मिलनी चाहिए."

"सजा उसे मिल जायेगी मगर शब्बो की जिंदगी और उसकी आजीविका ?"

शब्बो की आजीविका को लेकर उठा विवाद गहराने लगा तभी मजहर की माँ ने एक सुझाव रखा –

"हुजूर ! मेरा एक ही बेटा है और मैं बूढ़ी हो चुकी हूँ. मैं खुद ही खाने को तरस रही हूँ. मेरा इकलौता बेटा अपनी नई नवेली बहुरिया के संग मस्त है. मैं जानती हूँ जैसे ही शरीर की बची हुई ताकत खत्म हुई और मैं बर्तन बासन करने लायक रही नही कि ये सब मुझे घर से बाहर फेंक देंगे. मैं भीख मांगूगी जबकि अभी जो इसके पास जमीन-जायदाद है वह सब इस बुढिया और शब्बो ने मजदूरी कर बनाया है. बस इस अहसान फरामोश के नाम सारी खेती कर दी. हुजूर मेरे पांव तो कब्र में लटक रहे हैं लेकिन शब्बो को अभी जीना है. इसीलिए मेरे नालायक बेटे की जायदाद का बँटवारा हो जाना चाहिए. शब्बो इतने दिनों हमारे साथ रही है. मुझे विश्वास है शब्बो अब भी मुझे अपने साथ रख लेगी. मैं उसके साथ अपनी बची जिंदगी काट लूँगी."

जनता जनार्दन ने अपनी मर्जी जाहिर की कि आज ही जायदाद का बंटवारा हो जाय. जनता जनार्दन के मूड को भाँप डॉक्टर अजीज ने फैसला सुनाया कि मजहर की आधी जायदाद शब्बो को दे दी जाय और उसके साथ उसकी सास यानी मजहर की माँ रहेगी. शब्बो अपनी सास का पूरा ख्याल रखेगी. शब्बो के भविष्य में शादी करने के बावजूद उसे अगर बच्चा नहीं होता है और वह निसंतान मरती है तो उसकी जायदाद को किसी भले

काम में लगा दिया जाएगा और इस भले काम का फैसला भविष्य की कचहरी में होगा. इस फैसले पर मौलाना तनवीर ने अपनी भड़ास निकाली-

> "भले यह फैसला मेरे साथी और एक मुसलमान के मुँह से निकल रहा है और यहाँ सभी लोग इस फैसले पर बहुत खुश हैं. लेकिन डॉक्टर साहब, खुदा जाने मदरसे के काजी जी ने किस भरोसे से आपको यहाँ भेजा था. अरे आपको इस्लाम के तकाजे न मालूम हो तो शेखर साहब से ही पूछ लेते. क्यों शेखर बाबू, एक मुसलमान की जायदाद का बँटवारा क्या इस तरीके से हो सकता है ? उपर से एक तलाकशुदा औरत को ? अरे शाहबानो मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर पूरे देश में आग लगी है और आपकी कचहरी तो सुप्रीम कोर्ट से भी आगे निकल गयी. शेखर साहब अपने अब्बू जान के आने तक इन्तजार कर लें; कहीं बहुत देर न हो जाय."

मगर अब भड़ास निकलने से क्या फायदा ? फैसला हो चुका था, जिस पर जनता अपनी मुहर भी लगा चुकी थी. मजहर को पुलिस के हवाले कर दिया गया. फैसले के दूसरे ही दिन फौजी के नेतृत्व में निश्चय की सेना ने मजहर की जायदाद का बँटवारा सुनिश्चित कराते हुए आधे पर शब्बो व उसकी बूढ़ी सास को कब्जा दिलाया.

शेखर ने सिसकी की टीस की समाप्ति को महसूस किया लेकिन एक चिंगारी जनम ले चुकी थी जिससे पता नहीं क्या – क्या जलने वाला था. जब डॉक्टर अजीज व परसा मस्जिद के मौलवी सिद्दिकी शेखर से मिल विदाई के पहले की औपचारिकता में व्यस्त थे; मौलाना तनवीर आँखों में अंगार लिए कचहरी छोड़ चुके थे. शेखर ने उस अंगार की तपिश से हुई जलन के अहसास को नजरअंदाज कर दिया क्योंकि अब वह हल्का महसूस कर रहा था और उसे नींद आ रही थी.

****

-5-

कचहरी से निकल घर पहुँचने पर पाया, माँ बनावटी क्रोध के साथ तानों का एक पुलिंदा लेकर बैठी हैं –

"बाप – बेटे बिलकुल नहीं सुधरे. शाम होने वाली है, खाना तो समय से खाना खा लेना चाहिए....पता नहीं क्या करता रहता है...बचपन से यही रवैया रहा है, कुछ भी नहीं बदला..... भगवान जाने विदेश में कैसे.... परदेश से आते – आते भगवान जाने कहाँ उलझ गया.... कम से कम बाबू जी को तो आने देता...."

शेखर माँ से लिपटा –

"कब तक बेवजह गुस्से में और भूख बढ़ायेंगी. बड़ी नींद आ रही है. चलिये खा लें..."

घर का माहौल खुशनुमा और हल्का लग रहा था. शेखर ने माँ को बताया कि शब्बो को उसके पति की जायदाद में हिस्सा मिल गया है और उसके पति को पुलिस पकड़ कर ले गयी है. शब्बो को लेकर जो चिंता थी वह अब दूर हो गयी थी लेकिन इस अफरा – तफरी में अलका के अचानक चले जाने के बारे में चर्चा नहीं हुई थी. शेखर के मन में वह सवाल फिर से जीवित हो गया –

"पटना पहुँचने पर अलका तो यहीं थी फिर अचानक वह क्यों चली गयी ?"

पिछले दिनों यह सवाल रह – रह कर उठता रहा था, आज वह होठों पर आ गया –

"माँ, अलका थी न, अचानक क्यों चली गयी ?"

"हूं ! तुम्हारी छोटी मामी की बीमारी बढ़ गयी थी. भागलपुर में नर्सिंग होम में भर्ती कराना पड़ा."

"क्या ? तुमने बताया नहीं."

"चर्चा कहाँ निकली ? सभी शुभानी काका और शब्बो में फंस गए."

"लेकिन बताना तो था, अब कैसी हैं मामी ?"

"अब ठीक हैं. कल या परसों तक वापस आ जायेंगी."

"हम लोग चलें, उन्हें देख आयेंगे."

"मैं ? मैं कहाँ ? चाहो तो तुम...." माँ तेजी से खाने के मेज से उठ सुदामी को आवाज देती रसोई में चली गयीं – "कितनी बार कहा है, खाना खिलाते समय सामने रहा करो..."

अलका के अचानक चले जाने से जो भंवर निर्मित हुआ था वह अब छंट चुका था, लेकिन माँ का अचानक खाने के मेज से उठ जाना ? सब ठीक है ?

रात के साढ़े ग्यारह बजे आँख खुली, पाया माँ कमरे में है और अपने बेटे को निहार रही है.

"माँ !"

"चलो तुम्हारी नींद पूरी हो गई. अब उठो कुछ खा लें"

"सोने से पहले खाना और उठने पर खाना – मजेदार जिंदगी हो गयी है."

"अभी नहीं तो क्या अब सुबह के चार बजे खाओगे ?"

"माँ ! मामी जहाँ एडमिट हैं उस नर्सिंग होम का नंबर है ? मामा और अलका से बात कर लें."

रात के लगभग बारह बजे नर्सिंग होम के रिशेप्सन पर टेलीफोन की घंटी बजी और सालों बाद शेखर ने मामा से बात की –

"मामी कैसी हैं ?"

"अब बिलकुल ठीक हैं."

"हॉस्पिटल से कब छुट्टी मिलेगी ?"

"कल सुबह यहाँ से निकल जायेंगे. दोपहर तक सिलहन पहुँचेंगे. और तुम कैसे हो ? अब तो बड़े हो गए होगे. हम लोग आयेंगे, तुमसे मिलने."

"जी मामा. अलका कहाँ है ?"

मामा ने अलका को फोन दिया –

"अलका !"

"हाँ, शेखर भैया."

"कैसी हो ? अचानक चली गयी ?"

"माँ की तबीयत ज्यादा खराब हो गई थी. हम लोग आयेंगे. माँ थोड़ी ठीक हो जायें."

अलका से बात करने के बाद शेखर माँ से कुछ देर बातचीत कर निश्चय के गेट पर चला गया. देर रात तक वह छंगुरी यानी अब्दुल जब्बार उर्फ फ़ौजी से बात करता रहा. दूसरे दिन फिर से उसके अंदर अधूरेपन के एक नूतन अहसास ने आकार लेना शुरू किया. शाम होते – होते उससे नहीं रहा गया –

"माँ तुम चलोगी ? मैं जा रहा हूँ."

"कहाँ ?"

"सिलहन, मन नहीं लग रहा. सोच रहा हूँ अलका से मिल आऊँ, मामी को भी देख आऊंगा."

"लेकिन इस समय ? आठ बज रहा है, कल सुबह चले जाना."

"कोई बात नहीं. कितनी दूर है !"

"साथ में कौन जा रहा है ?"

"कोई नहीं, मैं अकेला ही जा रहा हूँ."

"नहीं, रास्ता ठीक नहीं है. फ़ौजी व डफली संग में जायेंगे."

माँ की बात मान ली गई. फौजी और डफली के संग शेखर निकल गया. बीच रास्ते में फौजी ने उन खेतों को दिखाया जिनमें नक्सली पेड़ के नवांकुर और छोटे पौधे पनप रहे थे. यद्यपि इक्कीसवीं सदी में जाने का सपना आँखों में था, रास्ते का हर गाँव तम की चादर ओढ़ खर्राटे ले रहा था. इन्हीं खर्राटों के बीच लगभग साढ़े नौ बजे बहुत पुराने लिखे एक पते – "पं. राम लगन तिवारी, ग्राम पोस्ट – सिलहन, जिला – भागलपुर वाया एकचारी" पर दस्तक हुई और तूफान आ गया –

"अरे आधी रात कौन आया है ?"

"अच्छा, छोटकी बहू ! निश्चय से कोई आया है."

"अजी, सुनते हैं, शेखर आये हैं."

"इस समय, आधी रात को ! क्या खिलायेंगे, पिलायेंगे ?"

"अलका ! अलका ! कहाँ हो, उठी नहीं क्या ? देखो शेखर भैया आये हैं ?"

हाँफती हुई अलका एक हाथ में लालटेन पकड़े बैठक में दाखिल होती है और तूफान थम जाता है –

"मुझे पता था आप आयेंगे."

"सचमुच !" – अलका बड़ी हो गई है और सुंदर भी. पल भर के लिए बैठक में छायी चुप्पी को शेखर ने तोड़ा –

"मामी कैसी हैं ?"

"ठीक !"

"शब्बो के बारे में पता है ? कैसी है ?"

"अब ठीक है."

"बेचारी ने बहुत बर्दाश्त किया है ! भगवान करे अब उसके ऊपर कोई विपदा न आये."

"लेकिन शेखर भैया, सुना है परसा मस्जिद से एलान हुआ है कि इलाके के सारे मुसलमान शुक्रवार के दिन कहलगाँव मदरसे में इकट्ठा हों. मदरसे के काजी निश्चय की दादागिरी के खिलाफ मोर्चा खोलेंगे. उनका साफ़ कहना है कि मुसलमानों के मामले में किसी का दखल बर्दाश्त नहीं किया जाएगा."

"दादागिरी ! कौन करेगा दादागिरी, फैसला तो उन्हीं लोगों ने किया है."

इसी बीच मँझली मामी आँख मलती बैठक में घुसीं –

"शेखर बाबू ! रुकेंगे या वापस जायेंगे ?"

शेखर मुस्कराया –

"क्यों मामी, भांजा एक रात अपने मामा के यहाँ नहीं रुक सकता ?"

मँझली मामी कहाँ चूकने वाली थीं –

"बाबू, आप बड़े लोग ! यहाँ इतने छोटे और गंदे घर में कैसे रहेंगे ?"